महानायक महाराणा प्रताप
{राणा कीका}

महाराणा प्रताप

मुख्य सम्पादक
डॉ. देव कोठारी
पूर्व निदेशक, साहित्य संस्थान, विद्यापीठ

सम्पादक

अनुराग सक्सेना
निदेशक,
प्रताप गौरव केन्द्र
टाईगर हिल्स, मनोहरपुरा उदयपुर

प्रताप सिंह झाला 'तलावदा'
इतिहासविद्
अमर प्रकाश तलावदा
१ दुर्गा नर्सरी परिसर, उदयपुर

डॉ. विवेक भटनागर
अधीक्षक
प्रताप गौरव शोध केन्द्र
मनोहरपुरा उदयपुर

डॉ. मनीष श्रीमाली
स. आचार्य
इतिहास विभाग
मो.ला.सु.वि., उदयपुर

मनोगत

प्रातः स्मरणीय, नर पुंगव, हिन्दुआ सूर्य, वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप भारतीय इतिहास के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक भारतीय राष्ट्र के जनमानस में प्रताप वीरता, साहस, संघर्ष तथा स्वाभिमान के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान देव पुरुष हैं। प्रताप भगवान श्रीराम की परम्परा के नायक हैं। मर्यादा, धीरोदात्तता, चारित्र्य मातृभमि के प्रति अनन्य आस्था ही नहीं तो प्रभु श्री राम के समान नहीं समाज के अंतिम व्यक्ति के भी ह्रदय में अपना स्थान बनाने का तिलिस्मी व्यक्तित्व प्रताप को सर्वकालिक महापुरुष की श्रेणी में खड़ा करता है। प्रताप जन–जन में प्रिय थे, तभी तो जब मेवाड़ की राजगद्दी जगमाल को देने के षड्यंत्र में पिता उदयसिंह जी भी फंस जाते हैं, मेवाड़ की जनास्था को स्वर देते हुए सभी सामंत एकमत होकर प्रताप का चयन करते हैं। प्रताप उत्साह बढ़ाते हैं, संघर्ष की घड़ी में संकल्प लेकर जुटने की प्रेरणा देते हैं, अत्याचार–अनाचार के आगे न झुकने का सामर्थ्य खड़ा करते हैं, विराट शक्ति से साहस के साथ टकराते भी हैं तो आवश्यकता पड़ने पर युद्ध क्षेत्र से सेना को लेकर निकल जाने का रणनीतिक निर्णय भी करते हैं। वो युवा साथियों के साथ आगे बढ़कर शत्रु का मानमर्दन भी करते हैं तो अनुभवी सामंत सलाहकारों की बात मान कर धैर्य पूर्वक शत्रु को आगे बढ़ते रहने देकर उलझाने का कूटचक्र भी रचते हैं। प्रताप भारतीय संस्कृति के सर्वगुण सम्पन्न आदर्श चरित्र हैं। प्रताप राजनीति के श्रेष्ठ खिलाड़ी हैं, कूटनीति के निष्णात जानक. ार हैं, युद्ध नीति के अनन्य योद्धा हैं। िमित्रों के सर्व प्रिय मित्र, भाइयों में सबसे प्यारा भाई, साहित्य–कला के पोषक, प्रजापालक, दूरदृष्टा, शत्रुओं को भयाक्रांत करने वाले दुर्दान्त योद्धा, चरित्रवान पुरुष, दायित्ववान पिता और मातृभूमि के चरणों में सर्वस्व समर्पण करने वाले महानायक महाराणा प्रताप आज भी नित्य नूतन आस्था के चिरंतन प्रवाह में तेजोमय प्रकाश पुंज के समान दैदीप्यमान हैं। प्रताप गौरव केन्द्र 'राष्ट्रीय तीर्थ' महाराणा प्रताप के जीवन, उनके कृतित्व, व्यक्तित्व को नवीन पीढ़ी तक ले जाने, भारत ही नहीं तो सम्पूर्ण विश्व के जन–जन तक प्रताप का महिमागान पहुंचाने का भागीरथी प्रयास है। विगत सन 2016 से निरंतर प्रताप गौरव केन्द्र यहां स्थित प्रदर्शनियों, मूर्ति शिल्पों, दृश्य–श्रव्य माध्यम से दिखाए जाने वाले विविध प्रदर्शनों (लाइट–साउंड शो) इत्यादि के माध्यम से आने वाले पर्यटकों में राष्ट्रभक्ति का भाव भरने का काम कर रहा है। समय–समय पर विविध कार्यक्रमों, सेमिनार, जयंतियों तथा अभियानों के माध्यम से भी केन्द्र जनमानस में प्रताप तथा मेवाड़ के अन्य महापुरुषों तथा वीरांगनाओं के संदेश का प्रसार करता है। यहां स्थित शोध केन्द्र तथा अध्ययन केन्द्र के माध्यम से हम प्रताप तथा मेवाड़ से जुड़े मिथकों तथा भ्रमों को शास्त्र शुद्ध अकाट्य तर्कों की सहायता से, सत्यान्वेषी शोधार्थियों तथा इतिहासकारों के सहयोग से उचित समाधानकारी परिणिति देने में जुटे हैं। उसी श्रंखला में संवत 1640 में विजयदशमी के दिन महाराणा प्रताप द्वारा दिवेर विजय के युगान्तकारी अवसर के महत्व को प्रतिपादित करने तथा इस विजय श्री से होने वाले परिणामों को जन–सामान्य तक पहुंचाने के उद्देश्य से दिवेर विजय महोत्सव प्रारंभ किया गया है। महोत्सव में होने वाले विविध कार्यक्रमों पर विचार करने बैठे तो अनुभव हुआ कि महाराणा प्रताप पर सर्वमान्य, तथ्यात्मक, शास्त्र सम्मत शुद्ध, निर्विवाद तथा युगानुरूप संक्षिप्त पुस्तिका तैयार करनी चाहिए और इसी दृष्टि से हम सभी के आदरणीय विद्वान लेखक एवं इतिहासकार डॉ. देव कोठारी जी के नेतृत्व में प्रताप गौरव शोध केन्द्र अधीक्षक डॉ. विवेक भटनागर जी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के सहायक आचार्य डॉ. मनीष श्रीमाली तथा वर्षों से मेवाड़ इतिहास पर निरंतर कार्य करने वाले श्री प्रताप सिंह जी झाला ने मिलकर इस पुस्तक का निर्माण किया है। मेरा सौभाग्य है कि ऐसे विद्वतजनों तथा इतिहासविदों के साथ काम करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। पुस्तक में प्रयासपूर्वक प्रताप के जीवन के सभी आयामों को सामने लाने का प्रयत्न किया गया है। वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप समिति के अध्यक्ष तथा अनन्य विद्वान डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा जी एवं हमारे प्रेरणा स्रोत श्री हनुमान सिंह जी राठौड़ के निरंतर मार्गदर्शन से यह पुस्तक सर्वसामान्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अनुराग सक्सेना
निदेशक
प्रताप गौरव केन्द्र, मनोहरपुरा,
बड़गांव के निकट, उदयपुर

प्रताप चरित्र

प्रातः स्मरणीय, हिन्दूपति, वीरशिरोमणि महाराणा प्रताप का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवापूर्ण है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उन्हीं को है। वह स्वदेशाभिमानी, स्वतन्त्रता का पुजारी, रण–कुशल, स्वार्थत्यागी, नीतिज्ञ, दृढ़ प्रतिज्ञ, सच्चा वीर और उदार क्षत्रिय तथा कवि थे। उनका आदर्श था कि बापा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकायेगा। स्वदेश प्रेम, स्वतंत्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूलमंत्र थे। उसको अपने वीर पूर्वजों के गौरव का गर्व था। वह ऐसे समय मेवाड़ की गद्दी पर बैठे, जब मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़गढ़ और प्रायः सारी समान भूमि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। मेवाड़ के बड़े–बड़े सरदार भी पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके थे। ऐसी स्थिति में उनके विरुद्ध अकबर ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य का बुद्धिबल, बाहुबल और धनबल लगा दिया था। बहुत से राजपूत राजा भी अकबर के ही सहायक बने हुए थे। यदि महाराणा चाहते तो वह भी उनकी तरह अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेते तथा अपने वंश की पुत्री उसे देकर साम्राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर आराम से रह सकते थे किन्तु वह स्वतन्त्रता के पुजारी केवल थोड़े से स्वदेशभक्त और कर्तव्यपरायण राजपूतों और भीलों की सहायता से अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गए। उनकी वीरता, रणकुशलता, कष्ट सहिष्णुता व नीतिमत्ता अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय थी। इन्हीं गुणों के कारण वह अकबर को जो उस समय संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली व ऐश्वर्यसम्पन्न सम्राट था, अपने छोटे से राज्य के बल पर वर्षों तक हैरान करते रहे और फिर भी अधीन न हुए। अकबर ने उन्हें अधीन करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए, अपने योग्य सेनापतियों को कई बार युद्ध के लिए भेजा, एक बार स्वयं भी चढ़ आया, किन्तु महाराणा प्रताप के आगे एक भी चढ़ाई में उसका मनोरथ पूर्ण न हुआ। महाराणा ने अकबर के आगे सिर न झुकाया और न उसे बादशाह ही कहा। उन्होंने मेवाड़ के उपजाऊ प्रदेश को उजाड़ दिया, खेती नष्ट करवा दी और शाही फौज की रसद तथा व्यापार का मार्ग रोककर नीतिज्ञता का परिचय दिया। वह केवल वीर और रणकुशल ही नहीं, किन्तु धर्म को समझने वाले सच्चे क्षत्रिय थे। केवल शिकार के लिए कुछ सिपाहियों के साथ आते मानसिंह पर धोखे व छल से हमला न कर और अमरसिंह द्वारा पकड़ी गई बेगमों को सम्मानपूर्वक लौटाकर उन्होंने अपनी विशाल–हृदयता का परिचय दिया। प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनानेवाली अकबर की कूटनीति का यदि कोई उत्तर देने वाले थे तो वह महाराणा प्रताप ही थे। महाराणा प्रताप के विषय में कर्नल टॉड का कथन है– अकबर की उच्च महत्त्वाकांक्षा, शासननिपुणता और असीम साधन, ये सब बातें दृढ़चित्त महाराणा प्रताप की अदम्य वीरता, कीर्ति को उज्ज्वल रखने वाला दृढ़ साहस और किसी अन्य जाति में पाया न जा सके ऐसे निष्कपट अध्यवसाय को दबाने में पर्याप्त न थी। आल्प्स पर्वत के समान अरावली में कोई भी ऐसी घाटी नहीं, जो प्रताप के किसी न किसी वीर कार्य, उज्ज्वल विजय या उससे अधिक कीर्तियुक्त विजय से पवित्र न हुई हो। हल्दीघाटी मेवाड़ की 'थर्मोपल्ली' और दिवेर मेवाड़ का 'मेराथन' हैं। वीर–श्रेष्ठ महाराणा प्रताप के कार्य आज भी मेवाड़ की इस उपत्यका में वर्तमान समय के से जान पड़ते हैं। आज भी उनके वीर कार्यों की कथाएं और गीत प्रत्येक वीर राजपूत के हृदय में उत्तेजना पैदा करते हैं। महाराणा का नाम न केवल राजपूताने में अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। अंग्रेजी तथा भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में प्रताप के वीरत्व और यशोगान के अनेक ग्रन्थ बन चुके हैं और बनते जा रहे हैं। भारत के भिन्न–भिन्न विभागों में महाराणा की जयन्ती भी मनाई जाने लगी है। जब तक संसार में वीरों की पूजा रहेगी, तब तक महाराणा का उज्ज्वल और अमर नाम लोगों को स्वतन्त्रता और देशाभिमान का पाठ पढ़ाता रहेगा। महाराणा का कद मझौला, आंखें बड़ी, चेहरा भरा हुआ और प्रभावशाली, मूछें बड़ी, छाती चौड़ी, बाहु विशाल और रंग गेहुंआ था। वह पुराने रिवाज के अनुसार दाढ़ी नहीं रखते थे। महामहोपाद्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा

अनुक्रमणिका

कुंवर प्रताप का बाल्यकाल और आरम्भिक जीवन

कुंवर प्रताप का राज्यभिषेक और शासन

मेवाड़ मुगल सम्बंध (568–1576)

हल्दीघाटी का युद्ध (1576)

मेवाड़ में मुगल सेना के अभियान (1577–1581)

दिवेर विजय से चावण्ड राजधानी बनाने तक (1581 से 1586)

1586 से 1597 तक प्रताप द्वारा पुनः मेवाड़ बसाना

महाराणा प्रताप का अंतिम समय

संदर्भ

परिशिष्ट

प्रताप का बाल्यकाल और आरम्भिक जीवन

वीर भूमि मेवाड़ ने युग–युग से तप, शौर्य, बलिदान, शक्ति, भक्ति, योग और भाव जैसे गुणों से ओत–प्रोत महामानवों से भारतवर्ष को सुशोभित किया। इस धरा के इन रत्नों की शृंखला में मोर मुकुट पर चमकने वाले पारसमणि, मेवाड़ के कीर्ति पुरुष, नर पुंगव, अतुलनीय जन नायक, प्रातः स्मरणीय, वीर शिरोमणि स्वतंत्रता के प्रेरणापुंज महाराणा प्रताप मेवाड़ ही नहीं तत्कालीन भारत के जननायक थे। उन्हें भारत की स्थानीय जनता ने अपना प्रेरणा पुंज और अकबर के विरुद्ध सनातन के रक्षक के रूप में सैनिक शिरोधार्य किया। उनके समान दृढ़ प्राण–प्रण वाले नायक का उदाहरण इतिहास में विरले ही मिलता है। उन्हें मुगल आक्रान्ता अकबर की भारत में उपस्थिति अस्वीकार्य थी और मृत्यु पर्यन्त स्वाभिमान व सनातन संस्कृति की रक्षा के लिए उन्होंने इस विदेशी आक्रान्ता से संघर्ष किया। महाराणा प्रताप ने मुगलों को लगातर युद्धों में पराजित कर अपनी स्वतंत्रता और स्वाधिनता की रक्षा की।

बाल्यकाल

महाराणा प्रताप का जन्म वर्तमान राजस्थान के कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) में महाराणा उदयसिंह की महारानी जयवंताबाई (जसकंवर) की कुक्षि से ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया, रविवार, विक्रम संवत् 1597 तदनुसार 9 मई 1540 ईस्वी को हुआ था। इनके दादा महाराणा सांगा (संग्राम सिंह) थे। प्रताप के जन्म के समय भारतवर्ष की की स्थिति अत्यंत विकट थी। यद्यपि 1433 ईस्वी से 1468 ईस्वी तक महाराणा कुम्भा के शासनकाल का समय मेवाड़ राज्य के लिए स्वर्णिम युग के समान था। इस युग में चित्तौड़ भारत की राजधानी (सत्ता का केन्द्र) का स्थान प्राप्त कर चुका था। उसके उपरांत 1509 ई. से 1528 ई. के बीच महाराणा सांगा को देशभर के हिंदू राजाओं ने अपने नायक के रूप में स्वीकार कर मेवाड़ का नेतृत्व अंगीकार कर लिया था।

खानवा युद्ध के बाद पुनः राज्य को सुदृढ़ करने में लगे महाराणा सांगा की ग्वालियर के निकट कालपी में धोखे से जहर देकर हत्या के उपरांत आगरा में विदेशी आक्रांता बाबर के नेतृत्व में मुगल सत्ता की स्थापना हुई, लेकिन उसका पुत्र हुमायूं इस सत्ता को स्थिर नहीं रख पाया और पठान शेरखां ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इसके बाद 1556 बाबर से अकबर तक यह मुगल सत्ता विस्तारित होकर दृढ़वती होती चल गई। अकबर के काल में राजपूताने के सभी राजाओं ने पतन की पराकाष्ठा पार कर अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। मेवाड़ को छोड़कर सभी दिल्ली के मुगल बादशाह को देश का सम्राट मान बैठे। पूरे देश में अकबर की छलनीति को कूटनीति का जामा पहनाकर अत्याचार का दौर शुरू किया गया।

अब ना धर्मसुरक्षित था और ना ही सम्मान। ऐसे समय में महाराणा प्रताप का उदय हुआ।महाराणा प्रताप, पूरे भारत को अपनी सल्तनत समझने का वहम पालने वाले दिल्ली के शासक आततायी अकबर के आगे नहीं झुके और उन्होंने स्वतंत्रता की मशाल को न केवल जलाए रखा अपितु स्वयं दीपशिखा बनकर समस्त विश्व को स्वातंत्र्य संघर्ष की सीख दी।

जननायक प्रताप

प्रताप का बचपन कुंभलगढ़ में बीता। राजकुमारों के समान ही शिक्षा दीक्षा हुई। कुंभलगढ़ में निवास के लगभग 10 वर्ष के समय में अधिकांशतः भीलों के साथ अपना समय व्यतीत किया और उनसे निकटता स्थापित कर ली। भील समाज में बालक को कीका कहा जाता है, ऐसे में प्रताप स्थानीय समाज में 'कीका' के नाम से लोकप्रिय हुए। अब कुंवर प्रताप मात्र महाराणा उदयसिंह के पुत्र नहीं थे, अपितु प्रत्येक जनसामान्य के बालक बनकर पूरे समाज में स्वीकार्य हो गए। कुंवर प्रताप एक समय का भोजन अपने बाल मित्रों के साथ ही करते थे।

एक बार प्रताप को सूचना मिली कि कुंभलगढ़ के निकट एक तेंदुआ ने आतंक मचा रहा है। क्षेत्र के भील बालक प्रतिदिन अपने साथ खेल–खेल में दरबार लगाने वाले प्रताप के पास अपने प्राण की रक्षार्थ आए। प्रजाजन की रक्षा के लिए शस्त्र विद्या में निपुण प्रताप 10 वर्ष की अल्पआयु में बिना डरे तेंदुए से भिड़ने चले गए और अपने भील मित्रों की सहायता से उसे मार गिराया। मां जयवंती बाई को यह पता ना लगे, ऐसा भरसक प्रयास करने पर भी मां को जानक. ारी मिली तो मां ने आशा के विपरीत उनकी पीठ थपथपाई और जनता की सेवा में जीवन अर्पणकरने के कर्तव्य के लिए उन्हें प्रेरित किया। ऐसा कहते हैंकि मां कीप्रेरणा से ही प्रताप दो तलवार अपने साथ रखते थे ताकि कभी युद्ध में शत्रु निहत्था हो तो उसे तलवार देकर फिर युद्ध के लिए ललकार कर हराया जा सके।

10 वर्ष की आयु में सन् 1550 ईस्वी में प्रताप कुंभलगढ़ से चित्तौड़गढ़ आ गए। भाटियाणी राणी प्रभाव में आकर उदयसिंह जी ने पटराणी जवंताबाई को उनके पुत्र कुंवर प्रताप के साथ चित्तौड़गढ़ की तलहटी में स्थित झाली राणी

का बावड़ी के पास बने महल में भेज दिया। यहां रहकर जयमल मेड़तिया से युद्ध प्रशिक्षण और रावत किशनदास से शिक्षा–दीक्षा ग्रहण करने लगे। इस दौरान चित्तौड़गढ़ के राजमहलों से उनके लिए प्रतिदिन भोजन का पेटिया (पुटक) आता था और भोजन बनाने के लिए महाराज की व्यवस्था की। साथ ही उनके व्यवस्था, प्रबंध व सुरक्षा के लिए महाराणा ने 10 राजपूत सरदारों को नियत किया। भोजन के समय कुंवर प्रताप अपने सभी समवय साथियों के साथ सुबह व शाम पंगत लगाकर भोजन किया करते थे। यह परम्परा जो प्रताप ने अपने बाल्यकाल में आरम्भ की, वह बाद में मेवाड़ राजपरिवार की स्थायी परम्परा बन गई। प्रशिक्षण प्राप्त करने के साथ ही मात्र 14 वर्ष की आयु में किए युद्ध अभियानों में प्रताप ने वागड़, छप्पन व गौड़वाड़ क्षेत्रों को जीत लिया। इसी समय प्रताप का विवाह 1557 ईस्वी में बिजौलिया के पंवार मामरख की कुंवरी अजब दे के साथ हुआ। इन्हीं की कोख से 16 मार्च 1559 में प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर अमर सिंह का जन्म हुआ। मामरख पंवार और उनके दो पुत्र डूंगर सिंह और पहाड़ सिंह हल्दीघाटी की लड़ाई में काम आए।

कुंवर प्रताप की वागड़, छप्पन और गौड़वाड़ विजय

महाराणा प्रताप की मृत्यु के लगभग सौ वर्षों बाद रचित रणछोड़ भट्ट कृत 'अमर काव्यम्' संस्कृत ग्रंथ में उल्लेख है कि प्रताप ने अपने कंवरपदे काल में 'राणा' उपाधिधारी सांवलदास और उसके भाई करमसी चौहान को युद्ध में मारा तथा वागड़ प्रदेश को जीतकर अधीन किया। सलूम्बर के राठौड़ों को पराजित करके छप्पन प्रदेश को अपने अधिकारी में ले लिया और बाली पर जीत कर गोड़वाड़ प्रदेश को मेवाड़ के अधीन किया।

वागड़ प्रदेश की विजय (1554 ईस्वी) – सांवलदास और करमसी चौहान वीरों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे दोनों योद्धा डूंगरपुर के रावल आसकरण की ओर से मेवाड़ के राणा उदयसिंह की सेना से लड़ते हुए मारे गये। मेहा वीटू के अनुसार डूंगरपुर के रावल द्वारा मेवाड़ के राणा को दंड एवं घोड़े देने से इनकार करने और राणा की प्रभुता की चुनौती देने के कारण मेवाड़ की सेना ने यह आक्रमण किया था। मेहा वीटू रचित काव्य में मेवाड़ की सेना की ओर से कुंवर प्रताप के लड़ने का उल्लेख नहीं है, किन्तु मेवाड़ की सेना के कुछ योद्धाओं के नाम दिये गये हैं यथा, रावत जग्गा (आमेट के चुंडावतों का पूर्वज), रावत खेतसिंह सिसोदिया, भवानीदास, लालसिंह, दुर्गा सिसोदिया, रावत किशनद. ास (सलूम्बर के चुंडावतों का पूर्वज) और कीता। इस युद्ध में रावत जग्गा के मारे जाने का उल्लेख है। मेहा वीटू के वर्णन से स्पष्ट नहीं होता कि विजय किसकी हुई? किन्तु अमरकाव्य के अलावा अन्य प्राचीन ख्यातों और वंशावलियों में सोम नदी के किनारे युद्ध होने, कुंवर प्रताप द्वारा वीरतापूर्वक युद्ध करके वागड़ के चौहानों को पराजित करने का उल्लेख है। मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में मेवाड़ और डूंगरपुर के मध्य हुए इस युद्ध के बारे में लिखा है कि युद्ध में आमेटवालों का पूर्वज जग्गा लड़ते हुए माही नदी के किनारे काम आया। नैणसी द्वारा इस युद्ध का माही नदी के किनारे होने का उल्लेख ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि डूंगरपुर और मेवाड़ राज्यों की सीमा पर सोम नदी पड़ती थी। माही नदी मेवाड़ और बांसवाड़ा राज्यों के बीच सीमारेखा बनाती थी। यह आक्रमण वि.सं. 1613 (1557 ई.) से पहले होना चाहिए, चूंकि उस वर्ष अजमेर के हाजी खां और राणा उदयसिंह के बीच हुए हरमाड़ा के युद्ध में रावल आसकरण का राणा की सेना की ओर से युद्ध करना पाया जाता है। इससे यह प्रकट होता है कि उपरोक्त सोम नदी का युद्ध और डूंगरपुर का पुनः मेवाड़ की अधीनता में आना 1557 ई. के पूर्व की घटना है। राणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ के संकट काल के वर्षों (1528 ई. से 1540 ई.) के दौरान डूंगरपुर का रावल मेवाड़ की अधीनता से स्वतंत्र हो गया था। जब पन्नाधाय राज. कुमार उदयसिंह को लेकर शरण हेतु डूंगरपुर गई तो तत्कालीन रावल पृथ्वीराज ने शरण देने से इनकार कर दिया था। अतएव यह आक्रमण डूंगरपुर पर पुनः मेवाड़ का प्रभुत्व स्थापित करने हेतु किया गया था।

छप्पनिया राठौड़ों पर विजय (1555) – अमरकाव्य के अनुसार कुंवरपदे में प्रताप की दूसरी उपलब्धि सलूम्बर के राठोड़ों को पराजित करके छप्पन प्रदेश जीतना था। मेवाड़ राज्य के संकटकाल (1528–1540ई.) के दौरान राठौड़ों ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग छप्पन के घने वनीय एवं पर्वतीय भाग में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना लिया था। राणा उदयसिंह ने मेवाड़ पर पूर्ण वर्चस्व कायम करने और आंतरिक सुव्यवस्था स्थापित करने के पश्चात छप्पन क्षेत्र को अधीन किया होगा। यह सैनिक अभियान प्रताप के नेतृत्व में हुआ। इस आक्रमण में चूंडावत रावत साईंदास के पौत्र किशनदास ने बड़ी वीरता दिखाई। उसने राठौड़ सिंहा को मार डाला और सलूम्बर पर अधिकार कर लिया। उस काल की रीति के अनुसार राणा उदयसिंह ने सलूम्बर की जागीर किशनदास को दे दी। तब से सलूम्बर की जागीर उसके वंशजों के पास बनी रही और वे किशनावत (कृष्णावत) कहलाये।

गोड़वाड़ प्रदेश पर विजय (1563–64 ईस्वी) – कुंवरपदे काल में प्रताप की तीसरी उपलब्धि गोड़वाड़ प्रदेश की पुनःविजय रही। गोड़वाड़ अरावली पर्वतमाला के पश्चिमी भाग की तलहटी में स्थित और मारवाड़ के रेतीले भू–भाग से सटा हुआ अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश है, जिस पर प्राचीन काल से मेवाड़ का अधिकार चला आता था। राणा कुम्भा के काल में जब मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों की सीमाएं निश्चित की गई तो गोड़वाड़ प्रदेश मेवाड़ के अधीन रखा गया। राणा

उदयसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में मेवाड़–मारवाड़ कलह के फलस्वरूप जोधपुर के शासक राव मालदेव ने गोड़वाड़ पर अधिकार कर लिया था, जिसको राणा उदयसिं तुरन्त वापस नहीं ले सका। 1557 ई. में अजमेर के निकट हरमाड़ा के युद्ध में हाजी खां और मालदेव की संयुक्त सेनाओं ने राणा उदयसिंह को पराजित किया था। 1562 ई. में राब मालदेव की मृत्यु हो गई और मारवाड़ में गद्दी पर अधिकार के लिये गृह–कलह उत्पन्न हुआ। अतएवं 1562 ई. के बाद राणा उदयसिंह ने अवसर का लाभ उठा कर सेना भेजकर गोड़वाड़ पर पुनः अपना अधिकार जमाया। इस सैनिक कार्रवाई का नेतृत्व कुंवर प्रताप ने किया। इस समय राणा उदयसिंह पहाड़ी इलाके में सुरक्षा की दृष्टि से अपनी सैनिक स्थिति सुदृढ़ करने में लगा हुआ था। पिछले वर्षों में बार–बार आक्रमणों के कारण मैदानी भाग के किनारे स्थित चित्तौड़गढ़ की स्थिति असुरक्षित हो गई थी। उदयसिंह की योजना मेवाड़ की दूसरी राजधानी पहाड़ी इलाके में कायम करने की थी, ताकि संकट के समय राजधानी चित्तौड़ से पहाड़ों में स्थानांतरित की जा सके। यही कारण था कि राणा ने गिरवा घाटी में उदयपुर बसाने का निर्णय वि.सं. 1600 (1543 ई.) में ही ले लिया था।

अकबर की चित्तौड़ विजय (1567–1568) – जब अकबर की छल व कुटिलता के समक्ष राजपूताने के सभी राजा झुक गए लेकिन चित्तौड़ अडिग रहा, तो उससे चिढ़कर 1567 ईस्वी मे अकबर ने चित्तौड़ पर भीषण आक्रमण किया। युद्ध विषयक परिषद में सभी सामंत के निर्णयानुसार महाराणा उदय सिंह को परिवार सहित कुंवर प्रताप की इच्छा के विरुद्ध गिर्वा के पहाड़ी क्षेत्र में भेजने का निर्णय किया गया। सभी सामंत के निर्णय को मानते हुए प्रताप भी सपरिवार गोगुंदा चले गए, चित्तौड़ दुर्ग जयमल राठौड़ तथा पत्ता (फतहसिंह) चुंडावत के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी करने लगा। अकबर चार मास तक चित्तौड़ दुर्ग के चारों ओर डेरा डाले बैठा रहा किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। इस बीच अकबर को जानकारी मिली की चित्तौड़ से महाराणा उदयसिंह और कुंवर प्रताप सिंह निकल चुके हैं और किले का भार जयमल मेड़तिया को सौंप दिया गया। इस पर अकबर ने जयमल को दो संधि प्रस्ताव भेजे। इसमें से पहले में लिखा कि महाराणा उदयसिंह यहां है नहीं, किला तेरा है नहीं, तो क्यूं लड़ता है। अकबर के इस प्रस्ताव का उत्तर जयमल ने दिया, जिसे कवि ने इस प्रकार लिखा –

हे गढ़ म्हारो म्हे धणी, असुर फिर किम आण।
कुंच्या ज्यूं चित्रकोट री, दीधि मोही दीवाण।।

अर्थात्

यह गढ़ मेरा है और मैं इसका अधिकारी हूं, इस पर कोई असुर (अकबर के लिए) कैसे अधिकार कर सकता है। इस चित्रकोट (चित्तौड़ का वास्तविक नाम) की चाबियां मुझे मेवाड़ के महाराणा ने दी है।

इस पर अकबर ने पुनः जयमल को लालच दिया कि वह जयमल को मेड़ता के साथ नागौर भी दे देगा। बस चित्तौड़ खाली कर के चला जाए। इस पर जयमल ने जवाब दिया कि –

भूख न मेटे मेडतो,न मेटे नागौर,
रजवट भूख अनोख्ड़ी, मेटे मरया चित्तौड़।।

अर्थात्

अकबर न तो मेड़ता मेरी भूख मिटा सकता है और न ही नागौर।
यह तो राजपूती शौर्य की भूख है और इस कारण मेरे मरने के बाद ही चित्तौड़ मिल सकता है।
इसके बाद पुनः समझौता का प्रयास अकबर करता है तो जयमल जवाब देता है कि –

जयमल लिखे जवाब यूँ सुनिए अकबर शाह।
आण फिर गढ़ उपराँ, पड़ीयो धड बादशाह।।

अर्थात्

मैं जयमल आपको यह उत्तर लिखता हूं इसे सुनो बादशाह अकबर। अगर चित्तौड़ के ऊपर आपको आना है तो
बादशाह यह मात्र उसी समय सम्भव है जब मेरा धड़ धराशायी होगा।

अकबर के किसी प्रलोभन के आगे मेवाड़ के वीर विचलित नहीं हुए। अंत मे रसद सामग्री की कमी के कारण जयमल राठौड़ व पत्ता चुंडावत के नेतृव में राजपूत सेनानायकों ने सर पर केसरिया (कसूमल) बांधकर साका किया और वीर पत्ता की रानी फूलकुंवर के नेतृत्व में 7 हजार क्षत्राणियों ने जौहर किया। अकबर ने चित्तौड़ विजय के पश्चात किले में प्रवेश किया और चित्तौड़ और आस–पास के गांवों में निवास कर रही 30 हजार निर्दोष जनता का निर्दयताप.ूवक नरसंहार करवा कर जश्न मनाया, क्या यही थी अकबर की महानता।

कुंवर प्रताप का राज्याभिषेक

चित्तौड़ हाथ से निकल जाने तथा पराजय के सदमे को उदयसिंह सह नहीं सके और बीमार रहने लगे। गोग. ुंदा में फाल्गुन पूर्णिमा विक्रम संवत् 1628 तद्अनुसार 28 फरवरी 1572 ईस्वी को होली के दिन उनका देवलोक गमन हो गया। इस समय मेवाड़ की परंपरा के अनुसार महाराणा के उत्तराधिकारी (महाराज कुंवर) का राजतिलक देवलो. कवासी महाराणा के अंतिम संस्कार के साथ ही किया जाता है, इसलिए महाराज कुवर दाह संस्कार में शामिल नहीं होता है, किंतु प्रताप को श्मशान में उपस्थित देख सभी सामंत अचंभित रह गए। इस पर ग्वालियर के रामशाह तंवर ने सगर से पूछा कि जगमाल कहां हैं? सगर ने उत्तर दिया कि क्या आप नहीं जानते हैं—कि वैकुंठवासी महाराणा ने उनको राज्य का मालिक बनाया है। उसी समय मेवाड़ के सरदार अखैराज सोनगरा (महाराणा प्रताप के नानाजी) ने रावत किसन दास (सलूम्बर) और रावत सांगा (देवगढ़) से कहा कि आप चूंडा के पोते हैं यह काम आप ही की सहमति से होना चाहिये था। अकबर जैसा शत्रु सिर पर खड़ा है, मेवाड़ को उजाड़ रहा है और अब यह अर्न्तकलह भी हो गया तो मेवाड़ के नाश में कोई संदेह नहीं रहेगा।

इसके उत्तर में रावत किसन दास व सांगा ने अखैराज से कहा कि पाटवी, सर्वगुण सम्पन्न और प्रतापी कुंवर प्रतापसिंह को किस अपराध में उत्तराधिकार व राज्याधिकार से वंचित रखा जा सकता है। इस विचार के बाद महाराणा उदयसिंह की उत्तर क्रिया करके जब सब सरदार वापस लौटने लगे तो गोगुन्दा में महादेव जी के मंदिर में विचार करने के लिए रूके और कुंवर प्रताप का महाराणा बनाने का निर्णय किया। मंदिर के निकट त्रिमुखी बावड़ी (इस बावड़ी का जीर्णोद्धार महाराणा उदयसिंह ने ही करवाया था) पर एक छतरी में बावड़ी के जल से ही कुंवर प्रताप का राजतिलक किया गया। यह इतिहास का अभूतपूर्व राजतिलक था, जिसमें राज्य के हित रक्षार्थ जन—जन से जुड़े प्रतिनिधियों ने कुंवर प्रताप की योग्यता, लोकप्रियता तथा सार्मथ्य का उचित सम्मान किया। महल पहुंचकर सामंतों ने नए महाराणा प्रताप सिंह को गद्दी पर बिठा दिया और जगमाल को राज्य गद्दी से उतार कर कहा कि आपकी बैठक महाराणा की गद्दी के सामने है, आपको अपने निर्दिष्ट स्थान पर ही बैठना चाहिए। जगमाल नाराज होकर वहां से निकल गया, तब सब सरदारों ने महाराणा प्रताप सिंह को नजराना किया। इसके बाद सभी सरदारों ने प्रताप से होली की परम्परा के अनुसार अहेड़ा (होली के दिन शिकार पर जाने की परम्परा) के लिए जाने को कहा। सभी ने प्रताप से कहा कि यदि महाराणा शोक रखेंगे तो पुश्तों तक मेवाड़ में होली की ओख (शोक की रस्म जिसमें कुछ भी खुशी न मनायी जाय) हो जाएगी। यह सुनकर महाराणा ने महला में नक्कार बजवाया और शिकार के लिए प्रस्थान किया। गोगुंदा से रवाना होकर महाराणा प्रताप कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) गए। वहीं पर कुछ माह बाद उनका राज्याभिषेक और उत्सव हुआ। इस उत्सव में मारवाड़ से राव मालदेव के पुत्र और महाराणा प्रताप के बहनोई राव चंद्रसेन, जोधपुर भी उपस्थित रहे।

इधर, जगमाल गोगुंदा से निकलने के बाद सपरिवार जहाजपुर चला गया। अजमेर के मुगल सूबेदार ने उसे सपरिवार जहाजपुर में रहने की अनुमति दे दी और जहाजपुर का परगना जगमाल को ठेके पर दे दिया। इसके बाद जगमाल अकबर के पास दिल्ली गया और उसे अपनी परिस्थिति सुनाई। अकबर ने जगमाल को जहाजपुर के परगने की जागीर का पट्टा जारी कर दिया।

महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा

प्रताप ने अपने राज्याभिषेक के पश्चात् जब राजकार्य संभालना आरंभ किया तो पाया कि मेवाड़ में परिस्थितियां अत्यंत विकट थी, न राजधानी थी, न महलों का वैभव—विलास। सेना की स्थित भी अत्यंत कमजोर हा चुकी थी। मेवाड़ के राज प्रबंधक और ज्यादातर अनुभवी सामंत 1568 के युद्ध में काम आ गए थे। प्रताप ने इन विपरीत परिस्थितियों में राज्य के पुर्नगठन, पड़ोसी राज्य से संबंध स्थापित करना और जनमानस में से स्वतंत्रता, स्वाधीनता और अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले योद्धा खड़े करने का कार्य प्रारंभ किए। स्वयं आगे होकर इस कार्य को प्राण—प्रण से पूरा करने के लिए उन्होंने प्रतिज्ञा की —

''मै मातृभूमि की रक्षा के लिए लडूंगा और जब तक मेवाड़ को पूर्ण रूप से स्वतंत्र और स्वाधीनता नहीं करा लेता हूं, तब तक सोने—चांदी के बर्तनों में भोजन नहीं करूंगा तथा पलंग पर भी नहीं सोऊंगा। पलाश के पात्रों में ही भोजन करूंगा और यह मेवाड़ की धरा ही मेरा बिछौना होगी।''

महाराणा प्रताप का सैन्य संगठन

महाराणा प्रताप ने कुंभलमेर (कुम्भलगढ़) को अपनी राजधानी बनाकर शासन सुव्यवस्थित करना आरम्भ किया। महाराणा प्रताप की भीषण प्रतिज्ञा का लोकमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। महाराणा प्रताप के आह्वान पर हर घर, हर वर्ग, हर श्रेणी, हर जाति, हर समुदाय के लोग मातृ—भू के रक्षार्थ समर के लिए प्रतिबद्ध हो गए। अत्यंत अल्प समय में प्रताप ने क्षत्रीय सहयोगियों के साथ ही अन्य समाज के योद्धाओं से सैन्य दल सज्ज कर लिया। इसके लिए ग्वालियर

के वयोवृद्ध रामशाह तंवर, देवगढ़ के रावत सांगा, बड़ी सादड़ी के झाला बीदा, रावत कल्याण सिंह चूण्डावत, बदनौर के रामदास मेड़तिया, सलूम्बर रावत किशनदास चूण्डावत, सरदारगढ़ के भीम सिंह डोडिया, चारण जैसा व केशव, भामाशाह, ताराचंद कावड़िया, जगन्नाथ महासानी, पुरोहित जगन्नाथ, पानरवा के राणा पूंजा व हकीम खां सूर जैसे वीरों के नेतृत्व में सैन्य संगठन को व्यवस्थित कर लिया। इन सब के समाचार अकबर के पास पहुंच रहे थे।

मेवाड़ मुगल सम्बंध (1568–1576)

महाराणा प्रताप कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) में रहकर मेवाड़ का राज्य सम्भालने लगे। इसकी जानकारी अकबर को लगी लेकिन उसने पहले गुजरात के विद्रोह से निपटना अधिक जरूरी समझा और सिद्धपुर की ओर अभियान किया। वहीं विक्रम संवत 1629 (अक्टूबर 1572 ईस्वी) अकबर ने अपने सबसे कौशलपूर्ण कूटनीतिज्ञ जलाल खां कोरची को प्रताप से वार्ता करने मेवाड़ भेजा भेजा। कोरची की महाराणा प्रताप से वार्ता असफल रही। इसके छः मास बाद गुजरात की समस्या से निपट कर अकबर ने डूंगरपुर व उदयपुर की ओर सेना भेजी। इस सेना का नेतृत्व आमेर का कुंवर मान सिंह कर रहा था। उसके साथ शाह कुली खां, मुराद खां, मुहम्मद कुली खां, सैय्यद अब्दुल्ला, मानसिंह का छोटा भाई जगन्नाथ कछवाहा, राजा गोपाल सिंह कछवाहा, बहादुर खां, लश्कर खां, जलाल खां और बूंदी के राव हाड़ा भोज सम्मिलित थे। अकबर का संधि प्रस्ताव लेकर कुंवर मानसिंह डूंगरपुर पहुंचा। वहां रावल आसकरण से उसका युद्ध हुआ। मानसिंह की सेना ने डूंगरपुर जीत लिया और रावल वहां से निकलकर पहाड़ों में चलागया। मानसिंह ने डूंगरपुर पर अधिकार कर वहां से अधिकतर सेना को अजमेर भेज दिया। कुछ सैनिक टुकड़ियों को साथ रखकर महाराणा से समझौता वार्ता करने के लिए आषाढ़ मास विक्रम संवत् 1630 (जून, 1573 ईस्वी) में उदयपुर पहुंचा। यहां पर महाराणा प्रताप ने मानसिंह का राजकीय सम्मान के साथ स्वागत किया। वहीं मानसिंह ने अकबर की ओर से भेजे गए संधि प्रस्ताव से महाराणा प्रताप का अवगत कराया। उक्त संधि प्रस्ताव से महाराणा प्रताप ने असहमति जाहिर की।

इसके बाद महाराणा ने कुंवर मानसिंह के सम्मान में उदयसागर पर एक गोठ का आयोजन किया। महाराणा स्वयं अपने पुत्र महाराज कुंवर अमरसिंह के साथ उदयसागर की पाल पर स्थित महल में पहुंचे। महाराणा ने राज्य शिष्टाचार के अनुसार भोजन के समय अमरसिंह को भेजा। मानसिंह प्रताप से समझौता वार्ता और संधि प्रस्ताव पर प्रताप से सहमति लेने में विफल रहा। इससे वह रूष्ट हुआ और दिल्ली की ओर रवाना हो गया।

उदयपुर से कुंवर मानसिंह तो सीधे आगरा पहुंचा और अकबर से मुलाकात कर मेवाड़ में प्रताप से वार्ता विफल होने की जानकारी दी। अकबर उसी समय मेवाड़ पर चढ़ाई करने का मन बना रहा था लेकिन वह उस समय अपने राज्य को व्यवस्थित करने में लगा हुआ था। अतः उसने कुछ माह गुजरने के बाद राजा भगवान दास कछवाहा को गुजरात से गोगुन्दा भेजा। महाराणा प्रताप ने भगवान दास की बड़ी खातिर की लेकिन वार्ता एक बार पुनः विफल रही। इसके एक माह बाद ही अकबर ने अपने वित्त मंत्री राजा टोडरमल को मेवाड़ वार्ता के लिए भेजा लेकिन वह भी प्रताप के साथ समझौता वार्ता में विफल होकर खाली हाथ लौट गया। इस प्रकार अकबर और प्रताप के मध्य चार बार कूटनीतिक वार्ता चली, लेकिन कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकल पाया। प्रताप सैन्य तैयारियों में लगे रहे और अकबर भी सही मौके के इंतजार में। महाराणा प्रताप अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता, स्वाधीनता और अस्मिता के साथ समझौता कर उसे किसी विदेशी आक्रान्ता को समर्पित नहीं करना चाहते थे। क्योंकि वह भारतीय वैदिक सनातन संस्कृति का पुरोधा थे।

प्रताप–अकबर वार्ता के चरण

1. अक्टूबर 1572 में जलाल खां कोरची के साथ

2. जून 1573 में आंबेर का कुंवर मान सिंह के साथ

3. सितंबर 1573 में आंबेर राजा भगवन्तदास के साथ

4. अक्टूबर 1573 में राजा टोडरमल के साथ

हल्दीघाटी (खमनोर) से शाहबाज खां की विफलता तक (1576 ई. से 1581 ई. तक)

इस समय मुगल साम्राज्य तेजी से अपने राज्य की सीमाओं में वृद्धि कर रहा था, वहीं मेवाड़ की स्वतंत्रता अकबर के लिए चुनौती बनी हुई थी। साथ ही अकबर के साम्राज्य विस्तार के मध्य सैन्य मार्ग और व्यापारिक मार्ग के दृष्टिकोण मेवाड़ राज्य बाधक बना हुआ था और अकबर से पराजित होकर विस्थापित राजपूत राजा और पठान सेनापति प्रताप की शरण में आते जा रहे थे, जो सामरिक, कूटनीतिक और सैन्य दृष्टि से अकबर के लिए एक समस्या थे। ऐसे में अकबर ने एक कूटनीतिक योजना के माध्यम से प्रताप को अपने अधीन करने का एक प्रयास किया। प्रताप जो अभी–अभी शासक बने थे, उन्हें एक ऐसे आक्रांता का का सामना करना था जो बेहद शक्तिशाली था और एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की ओर अग्रसर था।

ऐसे विकट समय में प्रताप के समक्ष दो ही मार्ग थे– प्रथम वह अन्य राजपूत राज्यों के समान अकबर से वैवाहिक सम्बंध स्थापित (आमेर के भारमल ने अपनी पुत्री हीर कुंवर का विवाह अकबर से किया) कर अधिनता स्वीकार कर ले और उसके विश्वास पात्रों में शामिल हो जायें। जैसे अकबर के नागौर दरबार में अधीनता स्वीकार करने पहुंचे जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर के शासकों के समान महाराणा प्रताप भी दासता ग्रहण कर उच्च मनसबदार बन जाए और मुगल साम्राज्य का विस्तार करने वाली एक भुजा बन शेष बची स्वतंत्र रियासतों का अस्तित्व समाप्त करने में उसके सहायक बन जाए। यह मार्ग सुगम और विलासी जीवन जीने में सहायक भी था।

लेकिन इसके विपरीत दूसरा मार्ग यह था कि शक्तिशाली मुगल साम्राज्य और अपनों के साथ संघर्ष का था। यह मार्ग संघर्ष, कष्ट और कंटकों से परिपूर्ण था। प्रताप यह भी अच्छी तरह से समझते थे कि आक्रांता के साथ यह संघर्ष दीर्घकाल तक चलेगा, जिसके प्रतिफल बेहद कष्टपूर्ण होंगे। परिस्थितियां भी अनुकूल नहीं थी। एक भाई जगमाल नाराज होकर मुगल दरबार में जा चुका था लेकिन प्रताप कहां झुकने वाले थे। स्वतंत्रता एव स्वाधिनता प्रिय महाराणा ने फूलों के स्थान पर कांटों भरी राह चुनी। क्योंकि स्वतंत्रता के लक्ष्य पर जाने वाला पवित्र मार्ग कंटकों से पूर्ण था। प्रताप ने मानवीय स्वतंत्रता के उच्च आदर्श को प्राप्त करने के लिए सर्वस्व बलिदान करने का निर्णय लिया।

हल्दीघाटी (खमनोर) युद्ध से पूर्व की पृष्ठभूमि

अकबर की कूटनीतिक असफलता ने यह जाहिर कर दिया था कि वह गुलामी की जंजीरों को सोने और मखमल का स्वरूप प्रदान कर मेवाड़ को नहीं पहना सकता। मेवाड़ जिसका ध्येय धर्म और स्वाधिनता था। जिस राजवंश के लोग सदियों से उसके सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आदर्श रक्षा करते आ रहे थे, प्रताप उसे नष्ट करने का कलंक कतई अपने ऊपर नहीं लगा सकते थे। प्रताप उस परंपरा के पोषक थे जिसमें 'जो दृढ़ राखे धर्म को, ताहि राखे करतार' का ध्येय सर्वोच्च था।

महाराणा प्रताप मेवाड़ के सीमित क्षेत्र में चारों ओर से घिरे रहकर मेवाड़–मुगल संघर्ष को आगे बढ़ा रहे थे लेकिन अपने राज्य में मुगलों की उपस्थिति को लगातार अस्वीकार कर रहे थे। उन्होंने अपने राज्य का कूटनीतिक, राजनीतिक एवं सामरिक स्वरूप हमेशा महत्वपूर्ण बनाए रखा। अगर अकबर मेवाड़ को अपने अधिन कर नियंत्रित करने में सफल हो जाता तो उसे बार–बार मेवाड़ पर आक्रमण करने की आवश्यकता क्या थी।

अतः बिहार और बंगाल की विजय के बाद अकबर ने अपना सारा ध्यान मेवाड़ की ओर कर दिया। क्योंकि चित्तौड़ विजय के बाद भी मेवाड़ मुगलों के अधिकार से बाहर था। प्रताप एक महान सेनानायक और योग्य कूटनीतिज्ञ थे। महाराणा प्रताप अच्छे से यह जानते थे कि अकबर जैसे विशाल सैन्य और आर्थिक संसाधन सम्पन्न शासक को सीमित संसाधनों के साथ पराजित करना आसान नहीं होगा। अतः महाराणा प्रताप ने अपनी योग्यता और प्रभाव से जालौर से लेकर सिरोही, ईडर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और बूंदी तक की परिधि के पास वाले सहयोगियों के साथ अच्छे सम्बंध बनाए रखे और मेवाड़ को संगठित बनाए रखा। मेवाड़ की यह शक्ति मुगल साम्राज्य के समक्ष चुनौती बन गई। महाराणा प्रताप ने सिसोदिया, राठौड़, पठान और हाड़ा की शक्ति को राष्ट्ररक्षण के लिए तैयार कर मेवाड़–मुगल संघर्ष में आक्रान्ता अकबर के साम्राज्यवादी व हिंसक चेहरे को उजागर कर दिया। प्रताप के इस संगठन में रामशाह तंवर के साथ आए हकीम खां सूर, जालौर के ताज खां, ईडर के नारायण दास आदि भी सम्मिलित थे। यह संघर्ष स्थानीय राष्ट्ररक्षकों और सम्राज्यवादी आक्रांताओं के मध्य था। जिसे बाद के कई अल्पज्ञानी इतिहासकारों ने अकबर की साम्राज्यवादी भावनाओं को भारत की एकता के लिए किए जा रहें प्रयत्न के रूप में बताने का प्रयास किया। जो कि अकबर की हिंसा और स्वतंत्रता को समाप्त करने वाले प्रयासों को न्यायोचित ठहराने का प्रयास था। वहीं प्रताप को इस एकता के प्रयास में बाधक बता कर अकबर को महिमामंडित किया गया है, जो कि सर्वथा अनुचित था।

प्रताप इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि निकट भविष्य में अकबर के साथ संघर्ष अवश्यंभावी है। प्रताप ने अपनी सामरिक तैयारी प्रारंभ कर दी। यह संघर्ष प्रताप को अपने स्वयं के बलबूते ही लड़ना था। अतः उसकी सुनियोजित योजना बनाना प्रारंभ कर दी। इस प्रकार प्रताप ने अपनी आंतरिक स्थिति को सुदृढ़, सुरक्षित एवं संगठित कर संघर्ष के लिए प्रतिक्षण तैयार रहे।

अकबर प्रताप के विरूद्ध किए जा रहे संघर्ष को एक न्यायोचित रूप देना चाहता था। जैसा कि बाबर ने महाराणा सांगा के विरूद्ध किए गए संघर्ष में देने का प्रयास किया था। अकबर युद्ध का कारण प्रताप के घमंडी स्वभाव, धोखाधड़ी और कपटपूर्ण व्यवहार को बताता है। यद्यपि देखा जाए तो प्रताप ने अकबर के भेजे गए शिष्टमंडल के साथ बेहद सभ्य, शालीन, विनम्र और शिष्टाचार युक्त व्यवहार किया था। अन्य किसी अवसर पर प्रताप के स्वभाव में घमंड झलकता दिखाई नहीं देता है। दूसरा, महाराणा प्रताप स्वयं स्वाधीन शासक थे, वह अकबर के अधीन नहीं थे। ऐसे में अकबर महाराणा प्रताप को किसी प्रकार का दंड देने का वैधानिक अधिकार रखता था। यह तो केवल उसका, अपने घृणित कार्य को

न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न मात्र था। जबकि स्वयं अकबर 1567–68 ईस्वी में मेवाड़ में हुए नृशंस नरसंहार का दोषी था। यह नरसंहार अकबर के माथे से युगों तक कभी नहीं मिटने वाला कलंक था।

हल्दीघाटी का युद्ध (1576)

अकबर फतहपुर सीकरी से अजमेर मुईनुद्दिन चिश्ती की दरगाह जियारत करने आया। यहीं अजमेर में उसने 1 मार्च 1576 ई. को प्रताप के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध के नेतृत्वकर्त्ता के रूप में आमेर के मानसिंह को नियुक्त किया गया। हल्दीघाटी युद्ध में मानसिंह को सेनापति बना कर क्यों भेजा गया यह एक महत्वपूर्ण विषय है। इससे पूर्व किसी मुगल सेना का सेनापति कोई हिंदू नहीं बनाया गया था। मानसिंह को सेनापति बनाये जाने के विषय में ''इकबालनामा–ए–जहांगीरी'' का लेखक मौतमिद खां लिखता है – ''कुंवर मानसिंह, जो इसी दरबार का तैयार किया हुआ खास बहादुर आदमी है और जो फर्जन्द (बेटा) के खिताब से नवाज़ा जा चुका है, अजमेर से कई मुसलमान और हिन्दू सरदारों के साथ राणा को पराजित करने के लिए भेजा गया। इसको भेजने में बादशाह का यही मकसद था कि वह राणा की ही जाति का है और उसके बाप–दादे हमारे अधीन होने से पहले राणा के अधीन और खिराजगुजार रहे हैं, इसको भेजने से संभव है कि राणा इसे अपने सामने तुच्छ और अपना गुलाम समझकर लज्जा और अपनी प्रतिष्ठा के ख्याल से लड़ाई में सामने आ जाए और युद्ध में मारा जाए।'' यहां पर सेनापति बनाये जाने के पीछे दोहरी नीति कार्य कर रहीं थी। पहली, राजपूत एकता को खंडित कर दिया जायें, जिससे कि मुगलों के विरूद्ध कोई राजपूत सैन्य संगठन खड़ा न हो सकें। दूसरी यह थी कि प्रताप स्वयं मेवाड़ की पहाड़ी भूमि छोड़कर मांडलगढ़ के मैदान में लड़ने के लिए आ जाएगा।

आंबेर का गढ़ मेवाड़ का अधिनस्त किला था, आंबेर का राज्य महाराणा कुंभा ने अपने अधीन किया था। आंबेर का किलेदार पृथ्वीराज राणा सांगा का बहनोई था और मेवाड़ की सेना का सेनापति भी था। वहीं पृथ्वीराज का पुत्र भारमल और पौत्र भगवानदास भी पहले महाराणा उदयसिंह के दरबार रह चुके थे। राजा भारमल ने 1562 ईस्वी में अकबर की अधीनता स्वीकार ली, तब आंबेर वालों ने मेवाड़ से अपने सम्बंध समाप्त कर लिए। जब मानसिंह शत्रु पक्ष का सेनापति बनकर मेवाड़ के विरूद्ध लड़ने के लिए आया तो यह महाराणा प्रताप को भावनात्मक रूप से उकसाने और अकबर द्वारा अपने रणनीतिक जाल में फंसाने का ही एकमात्र प्रयत्न था। इस तथ्य की पुष्टि इकबालनामा–ए–जहांग. ीरी से होती है। इस पुस्तक में लिखा है– ''कुंवर मानसिंह शाही फौज के साथ मांडलगढ़ पहुंचा और वहां सेना की तैयारी के लिए कुछ दिन ठहरा। राणा ने अपने गर्व के कारण उसे अपने अधीनस्थ जमींदारों में ही समझकर उसको उपेक्षा की दृष्टि से देखा और यह सोचा कि मांडलगढ़ पहुंच कर क्यों लड़े।'' 1 अप्रैल 1576 ई. को मानसिंह पांच हजार की सेना लेकर अजमेर से प्रस्थान करता है। वह मुगल सेना के बेहतरीन सेनानायकों गाजी खां, माधोसिंह, राय लूणकरण, मुजाहिद बेग, खंगार आदि के साथ मांडलगढ़ पहुंचा। जब प्रताप को मानसिंह के आने की सूचना मिली तो महाराणा प्रताप भी अपनी राजधानी कुंभलमेर (कुम्भलगढ़) से गोगुंदा आ गए। गोगुंदा में जब रणनीति को लेकर चर्चा चल रहीं थी तब प्रताप के समक्ष ऐसे ही सुझाव आएं जिसमें कहा गया कि मानसिंह को मांडलगढ़ जाकर ही सबक सिखाया जायें। मानसिंह भी मांडलगढ़ में जाकर रूक गया। वह वहीं प्रताप के आने का इंतजार कर रहा था। वयोवृद्ध, अनुभवी रामशाह तंवर की सामरिक सलाह से प्रताप ने मांडलगढ़ जाने का विचार त्याग दिया। क्योंकि मुगल सेना को पहाड़ी भूमि में लड़ने का अनुभव नहीं था। अतः दुश्मन की कमजोरी का लाभ लेने की नीति के तहत महाराणा प्रताप ने मांडलगढ़ जैसे मैदानी भूभाग पर जाकर युद्ध लड़ने के विचार को त्याग दिया। क्योंकि मुगल सेना की दक्षता और कौशल मैदानी भूमि पर युद्ध करने में था तथा पहाड़ी क्षेत्र में युद्ध लड़ने के मामले में अनुभवहीन थी। इसलिए मेवाड़ के सेनापतियों द्वारा निश्चित किया गया कि युद्ध का आधार स्थल पहाड़ी क्षेत्र रखा जाए और दीर्घकालीन संघर्ष की तैयारी की जाए। यद्यपि महाराणा प्रताप के युवा साथी मैदानी आमने–सामने के युद्ध के पक्षधर थे, क्योंकि वे चित्तौड़ नरसंहार का शीघ्र प्रतिशोध लेना चाहते थे, अतः प्रताप ने उनकी भी भावनाओं का सम्मान किया और खमनोर (हल्दीघाटी) सटी भूमि (रक्त तलाई) के यह युद्ध में उन्हें यह सुअवसर प्राप्त हुआ।

लगभग दो माह तक प्रतीक्षा करने के बाद मानसिंह ने मांडलगढ़ से चलकर मोही गांव से होते हुए खमणोर के निकट बनास के उत्तरी छोर पर बसे मोलेला गांव में अपना सैन्य शिविर लगाया। महाराणा प्रताप ने भी इस समय गोग. ुंदा से प्रस्थान कर अपने सैन्य दल के साथ हल्दीघाटी से कुछ दूर लोसिंग गांव में तालाब के निकट अपनी सेना का पड़ाव डाला। महाराणा प्रताप की सेना में ग्वालियर का रामशाह तंवर अपने पुत्रों– शालिवाहन, भवानीसिंह तथा प्रताप.

सिंह सहित, भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द, झाला मानसिंह, झाला बीदा, सोनगरा मानसिंह, डोडिया भीमसिंह, रावत किसनदास, रावत नेतसिंह, रावत सांगा, राठौड़ रामदास, पानरवा का राणा पूंजा सौलंकी, पुरोहित गोपीनाथ, पुरोहित जगन्नाथ, पड़िहार कल्याण, बच्छावत महता जयमल, महता रत्नचन्द खेतावत, महासानी जगन्नाथ, राठौड़ शंकरदास, मेरपुर का भीलू राणा, चारण जैसा और केशव आदि वीर सेनानायक थे। इनके अतिरिक्त हाकीम खां सूर भी मुगलों से लड़ने के लिए महाराणा की सेना में सम्मिलित हुआ। लोसिंग से आगे बढ़कर सेनाएं मानसिंह की गतिविधियों पर नजर गढ़ाए हुए थी मानसिंह की सेना के तीन कोस की दूरी पर महाराणा प्रताप ने अपनी सैन्य का शिविर लगाया और दुश्मन की प्रत्येक गतिविधि पर नजर लगाए हुए थे।

प्रताप न केवल एक वीर, साहसी सेनानायक, अपितु युद्ध में भी मानवीय नैतिक मूल्यों को सर्वोच्च स्थान देने वाले धीरोदात्त थे। प्रताप को युद्ध के प्रारंभ होने से एक दिवस पूर्व मध्यान् के बाद ऐसा अवसर मिलता है कि जिसमें वे चाहते तो मानसिंह का वध कर सकते थे किंतु उन्होंने धोखे से शत्रु की हत्या को वीरोचित्त कर्म नहीं माना। उल्लेख मिलता है कि युद्ध छिड़ने के एक दिन पूर्व अपराह्न के समय मानसिंह कुछ सैनिकों के साथ शिकार को गया था, जिसकी सूचना गुप्तचरों के माध्यम से महाराणा को प्राप्त हुई। इस पर सामंतों ने निवेदन किया कि इस अच्छे अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए और शत्रु को मार देना चाहिये, किन्तु वीर महाराणा ने झाला बीदा के क्षत्रियोचित मतानुसार यही उत्तर दिया कि इस तरह छल और धोखे से शत्रु को मारना सच्चे क्षत्रियों का काम नहीं। मानसिंह से कल युद्ध क्षेत्र में ही अमना–सामना करेंगे।

खमणोर (हल्दीघाटी) युद्ध का विवरण

खमणोर (हल्दीघाटी) युद्ध का विवरण देने वाले कई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध है। फारसी, राजस्थानी, तथा संस्कृत में गद्य तथा पद्य में प्राचीन स्त्रोतों से हल्दीघाटी युद्ध की जानकारी मिलती है। उपलब्ध सभी साक्ष्यों में युद्ध में उपस्थित व्यक्ति के आंखों देखे विवरण की प्रामाणिकता अधिक मानी जाती है। घटना की समझ एवं जानकारी के लिए युद्ध मैदान में उपस्थित कट्टर सुन्नी मुसलमान मुगल अधिकारी अब्दुल कादिर बदायूंनी (जो जेहाद करने के लिए अकबर से विशेष अनुमति लेकर मुगल सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में आया था) के विवरण को यहां दिया जा रहा है–

'जब मानसिंह और आसफ खां गोगून्दा से 7 कोस पर दर्रे (घाटी) के पास शाही सेना सहित पहुंचे तो राणा लड़ने को आया। ख़्वाजा मुहम्मद रफ़ी बदख्शी, शियाबुद्दीन गुरोह, पायन्दाह कज़्ज़ाक, अलीमुराद उज़्बेक और राजा लूणकरण, बहलोल खां तथा बहुत से शाही सवारों सहित मानसिंह हाथी पर सवार होकर मध्य में रहा और बहुत से प्रसिद्ध जवान पुरुष हरावल में रहे। चुने हुए आदमियों में से 80 से अधिक लड़ाके सैय्यद हाशिम बारहा के साथ हरावल के आगे भेजे गये और सैय्यद अहमदखां बारहा दूसरे सैय्यदों के साथ दक्षिण पार्श्व में रहा। शेख इब्राहीम चिश्ती के रिश्तेदार अर्थात् सीकरी के शेखजादों सहित काज़ी खां वाम पार्श्व में और मिहतरखां चन्दावल में रहा। राणा कीका (महाराणा प्रताप) ने हल्दीघाटी के दर्रे के मुहाने पर 3000 राजपूतों सहित आगे बढ़कर अपनी सेना के दो भाग किए। हकीम खां सूर के नेतृत्व में एक भाग ने पहाड़ों से निकलकर हमारी हरावल पर आक्रमण किया। भूमि ऊंची–नीची, रास्ते टेढ़े–मेढ़े और कांटों वाले होने के कारण हमारी हरावल में हड़बड़ी मच गई, जिससे हमारी हरावल पूरी तौर से बिखर गई। हमारी सेना के राजपूत, जिनका मुखिया राजा लूणकरण था और जिनमें से अधिकतर वाम पार्श्व में थे, भेड़ों के झुण्ड की तरह भाग निकले और हरावल को चीरते हुए अपनी रक्षा के लिए दक्षिण पार्श्व की तरफ दौड़े। इस समय मैंने (अल बदायूंनी), जो कि हरावल के ख़ास सैन्य के साथ था, आसफ़ खां से पूछा कि ऐसी अवस्था में हम अपने और शत्रु के राजपूतों की पहचान कैसे कर सकते हैं? उसने उत्तर दिया कि तुम तो तीर चलाये जाओ, चाहे जिस पक्ष के आदमी मारे जावे, भला तो इस्लाम का ही होगा। इसलिये हम तीर चलाते रहे और भीड़ ऐसी थी कि हमारा एक भी वार खाली न गया और काफ़िरों (हिन्दुओं) को मारने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। इस लड़ाई में बारहा के सैय्यदों तथा कुछ जवान वीरों ने रुस्तम की सी वीरता दिखाई। दोनों पक्षों के मरे हुए वीरों से रणखेत छा गया।'

'राणा कीका के सैन्य के दूसरे विभाग ने, जिसका संचालन राणा स्वयं कर रहा था, घाटी से निकलकर काज़ी खां के सैन्य पर, जो घाटी के मुहाने पर था, हमला किया। उसकी सेना का संहार करता हुआ राणा कीका उसके मध्य तक पहुंच गया, जिससे सब के सब सीकरी के शेखजादे भाग निकले और उनके मुखिये शेख मन्सूर के, जो शेख इब्राहीम का दामाद था, भागते समय एक तीर ऐसा लगा कि बहुत दिनों तक उसका घाव न भरा। काज़ी खां मुल्ला होने पर भी कुछ देर तक डटा रहा, परन्तु दाहिने हाथ का अंगूठा तलवार से कट जाने पर वह भी अपने साथियों के साथ भाग गया।'

'हमारी जो फौज पहले हमले में ही भाग निकली थी, नदी (बनास) को पार कर 5–6 कोस तक भागती रही। इस तबाही के समय मिहतर खां अपनी सहायक सेना सहित चंदावल से निकल आया। उसने ढोल बजाया और हल्ला

मचाकर फ़ौज को एकत्र होने के लिए कहा। उसकी इस कार्रवाई ने भागती हुई सेना में आशा का संचार कराया, जिससे उसके पैर टिक गये। ग्वालियर के राजा मान के पोते रामशाह ने, जो हमेशा राणा की हरावल में रहता था, ऐसी वीरता दिखलाई, जिसका वर्णन करना लेखिनी की शक्ति से बाहर है। पर मानसिंह के वे राजपूत, जो हरावल के वाम पार्श्व में थे, भागे, जिससे आसफ खां को भी भागना पड़ा और उन्होंने दाहिने पार्श्व के सैय्यदों की शरण ली। यदि इस अवसर पर सैय्यद लोग टिके न रहते, तो हरावल के भागे हुए सैन्य ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि बदनामी के साथ हमारी हार होती।'

बहलोल खां का मारा जाना

इसी समय मानसिंह की हरावल का नेतृत्वकर्ता बहलोल खां, जो माधोसिंह कच्छावा के साथ था, वह मानसिंह की रक्षा के लिए आगे बढ़ा और महाराणा प्रताप के सामने आ गया। इस पर प्रताप ने बहलोल खां के सिर पर तलवार से एक भरपूर प्राण घातक वार किया। इसमें बहलोल खां जिरह–बख्तर और घोड़े सहित दो हिस्सों में कट गया। बहलोल खां अकबर की सेना का सबसे शक्तिशाली उज्बेक सैनिक था। इस युद्ध में उपस्थित चारण रामा साण्डू इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं –

गयंद भान र मुहर ऊभो हुती दुश्त गत सिलहपोसां तणा जूय सार्थ ।
तद बही रूक अरणचूक पातल तणी मुगल बहलोलखी तणे मार्थ।।
तणे भ्रमऊद असवार चेटक तौ घणे मगरूर बहरार घटकी ।
आचरे जोर मिरजा तरौ आाछटी भाचरे चाचरै बीज भटकी।।
सूरतन रीजतां भीझतां सैलगुर पहां अन दोजतां कदम पाछे ।
दांत चढतां जवन सीस पछटी दुजड़ तांत साबण ज्यूंही गई त्राछे।।
वीर अवसाण केवाण उजबक बहै राणे हंथबाह दुय राह रटियौ ।
कट झलम सील बगतर बरंग अंग कटै कटे पाखट सुरंग तुरंग कटियौ।।

सारांश

उज्बेक योद्धा मिर्जा बहलोल खां सैनिकों के साथ मान सिंह के हाथी के धागे अश्वारूड़ लड़ा था। चेटक घोड़े पर सवार प्रताप ने उस पर ऐसा अचूक भीषण खड़ग–प्रहार किया कि उसके सिरस्त्राण, कवच, पाखट और घोड़ा सब एक साथ कट गया।

(डॉ. देवीलाल पालीवाल द्वारा संपादित प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप के अनुसार इस गीत के रचयिता गोरधन बोगसा है। श्री अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त इसी गीत का रचयिता अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हस्तलिखित ग्रन्थ सं. 26 बस्ता सं. 8 पृ. 5 के अनुसार रामा साण्डू है। ब्रजमोहन जावलिया के अनुसार रा. प्रा. वि. प्र. उदयपुर के संग्रहालय ग्रंथ सं 717–18 में इस गीत का रचयिता कविया कविनाथ को बताया गया है।)
केसरी सिंह बारहठ ने प्रताप चरित्र में हल्दी घाटी में बहलोल खां के मारे जाने लिखा है। जो इस प्रकार है –

शोधन मान कुमार को, राणा बढ्यो हरोल।
एते मह आयो नजर, बीर एक बहलोल।।1।।
बकत कुवाक्य आयो खान बलवान वहाँ,
तेग को उठाय रान तुर्क तनु ताक्यो है।
टोप काटि शीश अङ्ग साखत तुरंग काटि,
रक्त तैं अघाय खग भूमि रस चाख्यो है।
उभय विभाग कीने बिना श्रम महावीर,
केशोदास उपमा को शोधि शोधि थाक्यो है।
मीर बहिलोल भीम पातल भुजन काज,
जरा राक्षसी ने मानो जोरि कर राख्यो है ।।2।।
जरासिन्ध बहलोल के, वध में यह व्यतिरेक ।
भीम कियो द्वै भुजन तें, पातल ने कर एक ।।3।।

बहलोल खां का वध कर चेतक (चेटक) पर सवार महाराणा प्रताप तेजी से युद्ध के दौरान सेना को चीरते हुए मानसिंह की ओर बढ़े। मानसिंह इस युद्ध में हाथी पर अम्बावड़ी में बैठकर आया था। प्रताप ने अपने स्वामीभक्त अश्व चेटक के दोनों अगले पैर मानसिंह के हाथी की सूंड पर रखकर अपने स्वामी को हमला करने के लिए एक अच्छी स्थिति में ला दिया। प्रताप ने गर्जना करते हुए मानसिंह को कहा कि तुमसे जहां तक हो सके बहादुरी दिखाओ, प्रताप सिंह

आ पहुंचा है। यह कहकर प्रताप ने मानसिंह पर भाले का वार किया, परंतु मानसिंह हमले से बचने के लिए हौदे (अम्बावाड़ी) में झुक गया जिससे महाराणा का भाला अम्बावाड़ी पर टकरा गया और मानसिंह बच गया। इस समय महाराणा के घोड़े के अगले दोनों पैर मानसिंह के हाथी के सिर पर थे, हाथी की सूंड में पकड़ी हुई तलवार से चेटक का पिछला एक पैर पर जख्मी हो गया। महाराणा ने मानसिंह को मरा मानकर घोड़े को पीछे ले लिया। इस लड़ाई में जयमल मेड़तिया का पुत्र रामदास और ग्वालियर का राजा रामशाह अपने पुत्र शालिवाहन व अन्य दो पुत्रों के साथ वीरता के साथ लड़कर काम आए। माधवसिंह कच्छावा के साथ लड़ते समय राणा पर तीरों की बौछार हो गई और हकीम खां सूर जो सैय्यदों से लड़ रहा था, भागकर राणा से मिल गया। इस प्रकार राणा के सैन्य के दोनों विभाग फिर एकत्र हो गए।

महाराणा प्रताप को युद्ध मैदान से निकालना

इस समय तक महाराणा प्रताप के सात घाव लग चुके थे। ऐसी स्थिति में झाला बीदा ने महाराणा प्रताप को मुगलों के साथ भावी युद्ध संघर्ष जारी रखने के लिए युद्ध क्षेत्र से बाहर निकलने का आग्रह किया। प्रताप के मना करने पर झाला बीदा ने हकीम खां सूर को आदेश दिया कि चेटक की वाग (लगाम) पकड़ कर चेटक का मुंह मोड़ो। इसके साथ ही भामाशाह और ताराचंद को आदेश दिया कि आप अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ महाराणा प्रताप की रक्षा के लिए पीछे से सुरक्षा कवच प्रदान करो और महाराणा को युद्ध क्षेत्र बाहर निकालो। इसके पूर्व अवसर देख कर झाला बीदा ने प्रताप के छत्र व मेवाड़ के अन्य राजचिह्न धारण कर लिए जिससे मुगल सेना का ध्यान आसानी से भटकाया जा सकें। प्रताप को भामाशाह और उनकी सैनिक टुकड़ी के सहयोग से सुरक्षित युद्ध क्षेत्र से बाहर निकाल दिया। यह वर्णन मुंतखाब उल तवारीख में अब्दुल कादिर बदायूंनी करता है।

मानसिंह पर आक्रमण करते समय चेटक का एक पांव मानसिंह के हाथी की सूंड में लगी तलवार से कट चुका था। इसके बावजूद घायल चेटक ने महाराणा प्रताप के एक विश्वस्त साथी के समान तब तक साथ नहीं छोड़ा जब तक की उसने अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान तक नहीं पहुंचा दिया। हल्दीघाटी से लगभग दो मील दूर वलीचा गांव के निकट 20 से 25 फीट चौड़े एक बहते बरसाती नाले को एक ही छलांग में पार कर घायल चेटक ने भी अपने प्राण त्याग दिए। आज भी उस स्वामीभक्त चेटक की स्मृति में बनी समाधि के रूप में चिरस्थायी है। महाराणा प्रताप ने अपने स्वामीभक्त चेटक को श्रद्धांजली देते हुए कालातंर में वलीचा गांव में जहां चेटक का देहांत हुआ वहां शिवालय के निकट एक स्मारक बनवाया। चेटक स्मारक, शिवालय की नियमित पूजा–अर्चना व सार संभाल के लिए महाराणा प्रताप ने वलीचा गांव श्रीमाली ब्राह्मणों को भूमि दान के रूप में हमेशा के लिए दे दिया।

युद्ध का वर्णन करते हुए अबुल फज़ल अल्लमी आईन–ए–अकबरी में लिखता है कि उष्णकाल के मध्य उस दिन गर्मी इतनी पड़ रही थी कि खोपड़ी के भीतर मगज भी उबलता था। सैनिक पूर्णतया थक चुके थे। बदांयूनी लिखता है कि ऐसे समय लड़ाई प्रातः काल से मध्याह्न तक चली। जिसमें 500 आदमी खेत रहे, जिनमें 120 मुसलमान और शेष 380 हिन्दू थे। 300 से अधिक मुसलमान घायल हुए। उस समय लू आग के समान चल रही थी, हमारे सैनिको में चलने फिरने की भी शक्ति न रही। इसी समय सेना में यह खबर फैल गई थी कि राणा छल के साथ पहाड़ के पीछे घात लगाये खड़ा होगा। यह सुन मुगल सैनिक डर गये। बंदायूनी लिखता है कि डर की वजह से हमारे सैनिकों ने राणा का पीछा नहीं किया। वे अपने डेरों में लौट कर घायलों का इलाज करने लग गए। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विजेता सैनिकों में डर और हारी हुई सेना के हौंसले बुलंद होना, कैसे सम्भव था।

हाथियों की लड़ाई

दोनों सेनाओं के मस्त हाथी अपनी–अपनी फौज में से निकलकर एक दूसरे से खूब लड़े और हाथियों का दरा. ेगा हुसैन खां, जो मानसिंह के पीछे वाले हाथी पर सवार था, हाथियों की लड़ाई में शामिल हो गया। उनमें से अकबर का एक खास हाथी महाराणा के राम प्रसाद नामक हाथी से खूब लड़ता रहा जब वह पराजित हो गया तो मुगल फौजदार कमाल खां ने गजमुक्ता हाथी को सामने किया। बादशाही हाथी घायल हो गया। रामप्रसाद हाथी ने कई मुगल सैनिकों को मार गिराया। अब रामप्रसाद से लड़ने के लिए मुगल की ओर से गजराज हाथी को आगे किया गया, किंतु गजराज भी हाथी रामप्रसाद से मुकाबला न कर सका। अब रामप्रसाद का सामना करने के लिए मुगल महावत पंजू राम मदार को लेकर आया। दोनों हाथियों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। राम मदार हाथी भी पीछे हटने लगा किंतु दुर्भाग्य से युद्ध में अपने पराक्रम से दुश्मनों के दांत खट्टे करने वाले रामप्रसाद हाथी के महावत को गोली लग गयी और स्थित पूर्णतः बदल गयी। अवसर देखकर शाही हाथियों के प्रबंधक हुसैनखां ने महावत के मरते ही उसका स्थान लेकर राम प्रसाद को अपने नियंत्रण में कर लिया।

युद्ध का परिणाम और उद्देश्य

मुगल सेना के युद्ध का मूल उद्देश्य इस युद्ध में मौजूद बदायूंनी के माध्यम से ज्ञात होता है, जब वह इसे साम्प्रदायिक रंग देता है। अल बदायूंनी इस युद्ध को इस्लामीकरण का एक प्रयास बताता है। इस दिन से मानसिंह के सेनापतित्व के संबंध में मुल्ला शीरी का कथन हिन्दू इस्लाम की सहायता के लिए तलवार खींचता है चरितार्थ हुआ। यह हिंदू के माध्यम से इस्लाम की वृद्धि का प्रयास था।

युद्ध का अंत मेवाड़ की नीति के अनुसार हुआ। मुगल सेना में डर व्याप्त था। वे अब पहाड़ों की ओर आने से डर रही थी। कुछ समय गोगुंदा में कैदी की भांति रहने के बाद मुगल सेना ने मेवाड़ छोड़ दिया तथा उसके बाद स्वयं अकबर को सेना लेकर मेवाड़ विजय के लिए आने को मजबूर होना पड़ा। इसके परिणाम उनके प्रतिकूल रहें तभी अकबर ने मानसिंह की ड्योढ़ी माफ कर दी और अकबर स्वयं सेना लेकर मेवाड़ आया। महाराणा प्रताप ने अपनी विजय के उपलक्ष में ब्राह्मणों को भूमिदान दिया और अपनी संप्रभुता का सिद्ध किया। हल्दीघाटी के निकट वलीचा गांव का ताम्रपत्र इसका प्रमाण है। प्रताप की इस विजय ने मुगलों की अपराजेयता के भम्र को समाप्त कर दिया। यह प्रताप की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। इस युद्ध के बाद मुगल विरोधी शक्तियों को पुनः खड़ा होने का बल और साहस मिला। प्रताप अब स्वतंत्रता, स्वाभिमान और संघर्ष के प्रतीक बन गये।

हल्दीघाटी के बाद

हल्दीघाटी युद्ध के अगले दिन 19 जून को मेवाड़ की सेना के अचानक आक्रमण की आशंका भयभीत मुगल सेना के साथ जब मानसिंह जब गोगूंदा पहुंचा तो वह पूर्णतः खाली मिला। मानसिंह को गोगूंदा की ओर जाने वाले मार्ग पर स्थित राणा के महलों में कुछ रक्षक तैनात थे और मंदिरों में पुजारी आदि लोग थे। गांव बिल्कुल खाली था। पूरे गोगुन्दा में मेवाड़ के लोगों की संख्या मात्र बीस थी। वे भी यहां मंदिर की रक्षा के लिए आत्मबलिदान के लिए ठहरे थे। स्वयं युद्ध में मौजूद और आंखों देखा हाल लिखने वाला बदायूंनी लिखता है कि दूसरे दिन हमारी सेना ने वहां से चलकर रणखेत को इस अभिप्राय से देखा कि हर एक ने कैसा काम किया था। फिर दर्रे (घाटी) से हम गोगुन्दे पहुंचे, जहां राणा के महलों के कुछ रक्षक तथा मन्दिर वाले, जिन सबकी संख्या बीस थी, हिन्दुओं की पुरानी रीति के अनुसार अपनी प्रतिष्ठा के निमित्त अपने –अपने स्थानों से निकल आये और सब के सब लड़कर मारे गये। अमीरों को यह भय था कि रात के समय कहीं राणा उन पर टूट न पड़े, इसलिये अपनी रक्षार्थ उन्होंने सब मोहल्लों में आड़ खड़ी करा दी और गांव के चारों तरफ खाई खुदवाकर इतनी ऊंची दीवार बनवा दी कि सवार उसको फांद न सके। तत्पश्चात् वे निश्चिंत हुए। फिर वे मरे हुए सैनिकों और घोड़ों की सूची बादशाह के पास भेजने की तैयारी करने लगे, जिस पर सैय्यद अहमद खां बारहा ने कहा – ऐसी फिहरिश्त बनाने से क्या लाभ है? मान लो कि हमारा एक भी घोड़ा व आदमी मारा नहीं गया। इस समय तो खाने के सामान का बन्दोबस्त करना चाहिये। इस पहाड़ी इलाके में न तो अधिक अन्न पैदा होता है और न बंजारे आते हैं और मुगल सेना भूखों मर रही है। इस पर वे खाने के सामान के प्रबंध का विचार करने लगे। फिर वे एक अमीर की अध्यक्षता में सैनिकों को इस अभिप्राय से समय–समय पर भेजने लगे कि वे बाहर जाकर अन्न ले आवें और पहाड़ियों में जहां कहीं लोग एकत्र मिलें उनको कैद कर लें। मुगल सैनिकों को इन हालात में जानवरों का मांस और मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में बहुतायत से पैदा होने वाले कच्चे आम खाकर निर्वाह करना पड़ा। साधारण सैनिकों को रोटी न मिलने के कारण इन्हीं आम के फलों पर निर्वाह करना पड़ा, जिससे उनमें से अधिकांश सैनिक बीमार पड़ गये।'' हल्दीघाटी युद्ध के बाद जब यह दावा किया जाता है कि अकबर की सेना हल्दीघाटी युद्ध में विजय रही तो कथित विजयी सेना की ऐसी दुरावस्था का उदाहरण संभवतः अन्य कहीं से प्राप्त नहीं होता है।

महाराणा प्रताप ने अपनी सेना के साथ कोल्यारी गांव में अपना डेरा बनाया तथा घायलों की सेवा–सुश्रुषा यहीं की। मेवाड़ी सैनिकों के साथ भील सैनिकों ने चारों ओर पहाड़ी नाकों व रास्तों की नाकाबंदी कर दी। अब उनकी अनुम. ति के बिना मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्र में किसी का प्रवेश सम्भव नहीं था। दूसरी ओर, भयभीत मुगल सेना इस पर्वतीय क्षेत्र में आने का साहस भी नहीं जुटा पा रही थी। भील सैनिकों की सहायता से मुगल सेना की रसद आपूर्ति भी काट दी गई। जिससे मुगलों का यहां अधिक दिनों तक ठहरना संभव नहीं हा सका।

मुगल सेना की वापसी

मानसिंह गोगूंदा में चार मास तक अपना सैन्य शिविर लगाये रहा किंतु इस दौरान वह प्रताप के विरूद्ध कुछ न कर सका। मानसिंह की असफलता को देख अकबर नाराज हुआ तथा उसने मानसिंह, आसफ खां और काजी खां को पुनः दरबार में बुला लिया। अकबर मानसिंह की इस असफलता से नाराज था अतः उसने मानसिंह और आसफ खां की ड्योढ़ी माफ कर दी। शाही सेना डर और थक हार कर अकबर के पास अजमेर चली गयी। महाराणा प्रताप ने तुरत ही कार्रवाई करते हुए मेवाड़ में नियुक्त बादशाही थानों को हटाकर उनके स्थान पर अपने थाने स्थापित कर दिये और पुनः अपनी तत्कालीन राजधानी कुंभलगढ़ चले गये।

मेवाड़ में मुगल सेना के अभियान (1576–1581)

सितंबर 1576 ई. को अकबर अजमेर आता है और पुनः मेवाड़ विजय अभियान की दूसरी योजना तैयार करता है। महाराणा प्रताप अकबर की इस भावी युद्ध योजना से पूरी तरह परिचित थे। अतः महाराणा प्रताप ने अकबर की राह को कंटक पूर्ण बनाने के लिए एक विस्तृत गठबंधन खड़ा कर दिया। इस गठबंधन को नियंत्रित कर रोकना अकबर के लिए सहज नहीं था। महाराणा प्रताप ने अपने निकट सहयोगियों ताज खां, नारायण दास, दूदा व आसकरण को सक्रिय कर दिया। इस समय गुजरात एवं उसके आस–पास के मुगल आधीनता वाले क्षेत्रों में लूटमार एवं आक्रमण की नीति को अपनाया गया। अकबर के लिए अब केवल प्रताप को ही नहीं हराना था अपितु उसे उसके सहायकों के विरूद्ध भी सैन्य अभियान करने पड़े। जिससे अकबर के सैन्य संसाधन का बंटवारा हो गया। अतः अकबर चाह कर भी अपने संपूर्ण सैन्य संसाधनों को प्रताप के विरूद्ध प्रयोग में नहीं ला सकने की स्थिति में आ गया था।

अकबर का उदयपुर–गोगुंदा अभियान

अकबर नहीं चाहता था कि उसके शत्रु को इस बड़े युद्ध के बाद आगे की तैयारी का अवसर मिले। अतः बिना समय गंवाए वह अक्टूबर 1576 ई. अजमेर से गोगुंदा की ओर रवाना हुआ। अकबर के साथ उसके प्रमुख सेनानायक रायसिंह, सैय्यद हाशिम खां, तरसू खां, कुतुबुद्दीन खां, राजा भगवन्तदास, कुंवर मानसिंह, उमर खां, हसन बहादुर आदि मेवाड़ के अभियान पर आये। अकबर ने नाडोल, जालौर की तरफ अपने सेनानायक भेज कर प्रताप की घेराबंदी करनी चाही किंतु महाराणा प्रताप की कूटनीति के सामने अकबर बेबस दिखा। इसी दौरान हज यात्रियों का एक काफिला गोग. ुंदा से ईडर होता हुआ गुजरात निकला। महाराणा प्रताप ने उस काफिले को सुरक्षित निकलने दिया तथा उन पर कोई आक्रमण नहीं किया। यद्यपि महाराणा प्रताप उस क्षेत्र में काफी प्रभाव रखते थे किंतु धर्म एवं महिलाओं के मामलों में किसी प्रकार की परेशानी करना उनके आदर्श एवं संस्कारों के विपरीत था। महाराणा प्रताप के ईडर प्रवास के दौरान मुगल सेना का हमला नारायणदास पर हुआ। प्रताप वहां से सुरक्षित निकल गये किंतु इसके बावजूद अकबर ईडर को आसनी से जीता न जा सका। ईडर प्राप्ति के इस संघर्ष में मुगल सेना के उमर खां और हसन बहादुर मारे गये।

अकबर करीब दो माह तक उदयपुर में रहा और प्रताप को पकड़ने के लिए उसने अपनी पूरी क्षमता और ताकत झोंक दी, किंतु अकबर को केवल असफलता मिली। अकबर के उदयपुर रहते प्रताप ने गोगुंदा पर हमला कर उसे जीत लिया। अकबर को फिर सेना भेज कर उसे पुनर्विजित करना पड़ता है। अंत में अकबर ने हताश होकर दिसंबर में बांसवाड़ा और डूंगरपुर होते हुए मालवा की ओर जाने का निश्चय किया। उसने उदयपुर से जाते हुए फकरूद्दीन और जगन्नाथ कच्छवाहे को उदयपुर की रक्षा हेतु नियुक्त किया तथा सैयद अब्दुल्ला खां और राजा भगवन्तदास को उदयपुर घाटी के प्रवेश मार्ग देबारी में नियुक्त किया। अकबर की उपस्थिति में रावल आसकरण एवं रावल प्रताप ने अकबर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर का मेवाड़ विजय अभियान पूर्णरूपेण असफल रहा। किंतु एक बार फिर अकबर ने स्वयं की विजय के प्रतीक के रूप में सोने का सिक्का ढलवाया जिस पर अंकित था, ''सिक्का ढाला गया मुहम्मदाबाद उर्फ उदयपुर में, जीता जा चुका है।'' यह उसके उद्देश्यों से मेल नहीं खाता है। इतिहासकार मत प्रकट करते हैं कि अकबर की इस मेवाड़ यात्रा की समाप्ति के साथ ही राजस्थान के इतिहास में मुगल विजय काल का अंत हो जाता है। किंतु निरंतर दो हार (एक खमणोर के युद्ध में व दूसरी अकबर द्वारा उदयपुर विजय) अकबर की साम्राज्यवादी भावना को चुनौती दे रही थी। अतः मेवाड़ को विजित करने का भाव अकबर के मन से मिट नहीं पा रहा था। इस सिक्के को ढाल कर अकबर अपने मन की खीज का समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। इसके बाद अकबर मेवाड़ विजय के लिए अपने श्रेष्ठ सेनापति शाहबाज खां को मेवाड़ विजय पूर्ण करने के लिए अभियान पर भेजता है।

शाहबाज खां के सैन्य अभियान से पूर्व की स्थिति

अकबर का सैन्य अभियान भले ही प्रताप के विरूद्ध सफल नहीं हुआ किंतु अकबर प्रताप के सहयोगियों को तोड़ने और दबाने में सफल रहा। प्रताप के समक्ष अब चुनौती अधिक विकट थी क्योंकि अब मुगल सेना चारों तरफ से प्रताप की घेराबंदी की रही थी। यद्यपि इसके बावजूद मुगल सेना प्रताप की मुख्य भूमि पर अपना कोई विशेष प्रभाव स्थापित करने में सफल नहीं रही। फिर भी प्रताप भावी मुगल सेना से संघर्ष और उसके परिणामों से पूर्णतः सावधान थे। अतः प्रताप ने दूरगामी परिणामों को ध्याने में रखते हुए नवीन रणनीति पर कार्य प्रारंभ किया। यद्यपि प्रताप का मुख्य केंद्र कुंभलगढ़ था किंतु भावी संघर्ष में उसके सभी पक्षों को देखते हुए ऐसे स्थान की भी आवश्यकता थी जहां मुगल सेना का पहुंचना सहज नहीं हो और ऐसा निरापद स्थल कोल्यारी के निकट आवरगढ़ था। ऐसे कठिन समय में आवरगढ़ प्रताप की अस्थायी राजधानी बनी।

कर्नल टॉड इस संदर्भ में लिखता है कि इस नीति से महाराणा प्रताप ने राजपूताने के इस बगीचे को विजेताओं के लिए निरूपयोगी बना दिया। अक्टूबर 1577 ई. में महाराणा प्रताप ने मोही के मुगल थाने पर आक्रमण किया और

उस परगने की फसल भी नष्ट कर दी। इस संघर्ष में मोही थाने का मुगल थानेदार मुजाहिद बेग मारा गया तथा शेष मुगल सैनिक भाग खड़े हुए। महाराणा प्रताप लगातार मुगल थानों पर हमला कर उन्हें चुनौती दे रहें थे। प्रताप का इस क्षेत्र पर प्रभाव और शत्रु पक्ष में खौफ था कि अल बदायूंनी जनवरी 1577 ई. में देपालपुर शाही दरबार में शीघ्रता शीघ्र पहुंचना चाहता था किंतु मेवाड़ और बांसवाड़ा के सीधे रास्ते से जाने का साहस उसमें नहीं था। अंततः विवश होकर वह ग्वालियर, सारंगपुर एवं उज्जैन होते हुए देपालपुर पहुंचा। उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि खमणोर युद्ध और अकबर के सेना सहित मेवाड़ आने के उपरांत भी महाराणा प्रताप के भय से मुगल सेना की मेवाड़ के पर्वतीय क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस नहीं था।

शाहबाज खां का सैन्य अभियान

अकबर ने प्रताप के विरूद्ध अपने मीरबख्शी शाहबाज खां को भेजा। उसके साथ मानसिंह, पायंदा खां मुगल, सैयद कासिम, सैयद राजू, उलूग असद तुर्कमान, गज चौहान आदि सेनानायकों से सुसज्जित विशाल सेना के साथ प्रताप को नष्ट करने के लिए भेजा। शाहबाज खां अक्टूबर 1577 ई. में अजमेर से मेवाड़ की ओर सेना के साथ बढ़ा। शाहबाज खां का यह अभियान बेहद द्रुत सैन्य अभियानों में से एक था। वह महाराणा प्रताप को किसी भी प्रकार की तैयारी का समय नहीं देना चाहता था। वह अपने साथियों के साथ बड़ी तेजी से पश्चिमी मेवाड़ के पहाड़ी भाग में प्रविष्ट हुआ। महाराणा प्रताप को घेरने तथा रोकने के लिए जगह–जगह मुगल थाने कायम किये। उसने बादशाह से ऐसी अतिरिक्त सेना की भी मांग की जो उस इलाके में मुगल थानों की रक्षा कर सके। इस पर बादशाह ने फतहपुर सीकरी के शेख इब्राहीम को ससैन्य भेजा। जिसको लावलाई के थाने की रक्षार्थ नियुक्त किया। शाहबाज खां की सैनिक टुकड़ियां भोमट के घने वनीय भाग में प्रवेश कर गई और गोगुंदा सहित विस्तृत इलाके पर छा गई। महाराणा प्रताप ने इस विशाल सेना का मुकाबला करना ठीक नहीं समझा। उसने सीधी झड़पों से बचने के आदेश देकर अपनी सैन्य टुकड़ियां चारों ओर घने वन में सुरक्षित स्थलों में फैला दी और स्वयं कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) के सुरक्षित दुर्ग में पहुंच गये। महाराणा प्रताप की इस नीति के कारण मुगल सेना बिना अवरोध मेवाड़ के पश्चिमी पहाड़ी भाग में फैल गई, किन्तु हाथ कुछ नहीं लगा। शाहबाज खां ने खीज कर भगवंत दास और मानसिंह को वापस मुगल दरबार के लिये यह कह कर रवाना कर दिया कि वे राणा के सजातीय और सम्बंधी होने के कारण सैनिक कार्रवाइयों में जानबूझकर विलंब करते हैं और कतराते हैं। उसके बाद वह कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) पर अधिकार करने के लिये बढ़ा, जहां महाराणा प्रताप ठहरे हुए थे।

शाहबाज खां ने कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) की तलहटी में स्थित केलवाड़ा गांव पर अधिकार कर घेरा डाला। शरीफ खां, गाजी खां और मिर्जा खां ने चारों ओर पहाड़ियों पर चढ़कर दुर्ग पर हमले शुरू किये। मुगल सेना ने देसूरी के दर्रे की ओर से नाडोल पर भी नाकेबंदी कर दी। इस पर दुर्ग में रसद पहुंचने के मार्ग बंद होने से अब दुर्ग में रसद की कमी होने लगी। ऐसे में प्रताप ने दीर्घकालीन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए दुर्ग का भार अपने मामा भाण सोनगरा को सौंपते हुए कुंभलमेर दुर्ग से सुरक्षित निकल गये। भाण सोनगरा ने बेहद सूझ–बूझ के साथ इस संघर्ष को जितना लंबा खींचा जा सकता था खींचा ताकि प्रताप सुरक्षित स्थान पर पहुंच जायें और अपनी तैयारी प्रारंभ करें। भीषण संघर्ष के बाद राव भाण सोनगरा वीरगति को प्राप्त हुआ। कुंभलमेर दुर्ग 3 अप्रैल 1578 ई. को शाहबाज खां जीतने में सफल रहा। यह दुर्ग अपने निर्माण के बाद पहली बार शत्रु पक्ष द्वारा जीता गया। इस महत्वपूर्ण सफलता के बाद भी शाहबाज खां अपने मूल उद्देश्य में हासिल करने में असफल रहा और वह प्रताप को नहीं पकड़ सका। उसके बाद वह पुनः फतहपुर सीकरी लौट गया।

वागड़ पर प्रताप की दूसरी विजय (1578 ईस्वी)

कविराजा श्यामलदास और गौरीशंकर ओझा ने लिखा है कि महाराणा प्रताप ने अपने राज्यकाल में 1578 ई. के लगभग रावत भाग के सेनापतित्व में डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा राज्यों के विरुद्ध सेना भेजी। सोमनदी के किनारे युद्ध हुआ। युद्ध में चौहान योद्धा पराजित होकर भाग गये। ओझाजी ने बणेश्वर के विष्णु मन्दिर के वि.सं. 1617 (1561 ई.) की प्रशस्ति के आधार पर डूंगरपुर राज्य के इतिहास में राणा उदयसिंह और डूंगरपुर के रावल आसकरण की सेनाओं के बीच युद्ध होने का वर्णन किया है। आसकरण का राज्यकाल 1549 से 1580 ई. तक रहा। इससे यह प्रकट होता है कि रावल आसकरण के राज्यकाल में मेवाड़ के दो आक्रमण हुए। पहला आक्रमण प्रताप के कुंवरपदे के काल में हुआ, जो उपरोक्त प्रशस्ति लिखे जाने से पहिले हुआ। डूंगरपुर पर द्वितीय आक्रमण राणा प्रताप के राज्यकाल में 1578 ई. में हुआ। 18 जून 1576 ई. के हल्दीघाटी युद्ध में राव आसकरण का मेवाड़ की सहायता हेतु आना नहीं पाया जाता। उसके बाद अक्टूबर 1576 ई. में उसने मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वागड़ प्रदेश को मेवाड़ के अधीन बनाये रखने हेतु प्रताप ने रावत भाण सारंगदेवोत के नेतृत्व में 1578 ई. में सेना भेजी। इस युद्ध में वागड़ियों चौहानों ने बड़ी वीरता दिखाई और भाण बुरी तरह घायल हुआ। इसके बाद डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों ने पुनः मेवाड़ की अधीनता स्वीकार कर ली।

भामाशाह का मालवा अभियान

शाहबाज खां फतहपुर सीकरी लौट गया तो शाही सेना के दबाव में कमी आई। प्रताप ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए मुगलों पर दबाव बढ़ाने तथा दूसरी ओर आर्थिक संसाधनों को जुटाने के लिए मालवा अभियान किया। राणा प्रताप ने इस दौरान अपनी सैनिक गतिविधियां मेवाड़ के दक्षिण–पश्चिमी भाग, मालवा एवं गुजरात से सटे हुए छप्पन प्रदेश की ओर बढ़ा दी और मैदानी इलाके के सभी मुगल थानों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय 1578 ई. के सितंबर–अक्टूबर माह के लगभग भामाशाह और ताराचंद ने रामपुरे से निकलकर ससैन्य मालवे के मुगल इलाके पर धावा बोला और वहां से पच्चीस लाख रुपये एवं दो हजार अशर्फिया दंड स्वरूप वसूल करके महाराणा के पास चूलिया मुकाम पर पहुंच कर भेंट की। इस राशि से प्रताप को सैनिक एवं प्रशासनिक व्यय की व्यवस्था में बड़ी मदद मिली। भामाशाह की सैनिक एवं प्रशासनिक क्षमता को देखकर राणा प्रताप ने अपने तत्कालीन प्रधान महासानी रामा के स्थान पर भामाशाह को मेवाड़ राज्य का प्रधान नियुक्त किया। इस नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्राचीन दोहा प्रसिद्ध है–

भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द।
धरची बाहर करणं, मिलियो आय मरद्द।।

शाहबाज खां का दूसरा अभियान

महाराणा प्रताप की आक्रामक नीति एवं उसके द्वारा मुगल सैन्य–दलों पर उनके अनवरत आक्रमणों से क्षुब्ध होकर अकबर ने 15 दिसंबर 1578 ई. को पुनः शाहबाज खां को बहुत से संसाधनों के साथ गाजी खां बदख्शी, मुहम्मद हुसैन, सैयद तैमूर बदख्शी, मीरजादा अली खां आदि सेनानायकों के साथ अपने दूसरे मेवाड़ अभियान पर भेजा। शाहबाज खां विशाल सेना के साथ मेवाड़ में प्रवेश किया और महाराणा प्रताप की खोज में उसने पर्वतीय क्षेत्रों में खोजी अभियान तेजी के साथ किया। महाराणा प्रताप ने आमने–सामने की युद्ध नीति के स्थान पर पूर्ववत् छापामार युद्ध नीति को ही अपनाया। मुगल सेना का कहीं भी सीधा मुकाबला नहीं किया बल्कि महाराणा प्रताप की सैनिक टुकड़ियां पहाड़ों में सर्वत्र छिपकर, यकायक मुगल सेना पर धावा बोलकर, धन–जन की हानि पहुंचा कर और लूटमार कर सुरक्षित लौट जाती थी। चूंकि इस प्रकार की कार्रवाईयां चारों ओर की जाती थी, अतएव शाहबाज खां के लिये प्रताप के स्थान की निश्चित जानक. ारी प्राप्त करना संभव नहीं हुआ। अन्त में असफल एवं निराश होकर वह पुनः विभिन्न थानों पर मुगल सैन्य दल नियुक्त करके छः सात महिने बाद 1579 ई. के मध्य में मेवाड़ से वापस मुगल दरबार में लौट गया। उस समय मेवाड़ में इस प्रकार के लगभग पचास मुगल थाने थे। मेवाड़ के मैदानी इलाके में प्रधान थाने दिवेर, ऊंठाला, मोही, मदारिया चितौड़गढ़, मांडलगढ़, जहाजपुर, मंदसौर आदि में थे। शाहबाज खां के लौटते ही प्रताप ने पुनः मुगल थानों पर हमले शुरू कर, उन्हें ध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया।

शाहबाज खां का तीसरा आक्रमण

मुगल क्षेत्र पर महाराणा प्रताप के लगातार आक्रमण मुगलों के लिए सिरदर्द बन चुके थे। मुगल न तो महाराणा प्रताप को रोकने में सफल हो रहे थे और न ही वे उन्हें पकड़ पाने में सफल हो रहे थे। महाराणा प्रताप को रोकना अकबर के सम्मुख बड़ी चुनौती थी। अकबर के प्रयत्न लगातार असफल हो रहे थे किन्तु मेवाड़ को अधीन करना और उस क्षेत्र में उपद्रवों को रोकना साम्राज्य की एकता और अकबर की प्रतिष्ठा के लिये आवश्यक था। अतएव एक बार फिर शाहबाज खां की क्षमता और साहस पर भरोसा करके उसको तीसरी बार 9 नवंबर 1579 ई. को सांभर मुकाम से ससैन्य मेवाड़ की ओर भेजा। उसने इस बार मालवे की ओर से होते हुए मेवाड़ की मुख्य भूमि में मांडलगढ़ और भैंसरोड़गढ़ होते हुए दक्षिण–पश्चिमी दिशा से प्रवेश किया। किन्तु उसके आक्रमण का कोई वांछित परिणाम नहीं निकला एवं पूर्व की कार्रवाइयों एवं घटनाओं की पुनरावृत्ति से अधिक कुछ नहीं हुआ। शाहबाज खां ने छप्पन के पहाड़ी भाग में प्रवेश कर तेजी के साथ इधर–उधर सैन्य दल भेजे किन्तु वह चावंड की ओर नहीं बढ़ सका। महाराणा प्रताप आमने–सामने के संघर्ष से बचते हुए ससैन्य पीछे हटकर पहले भोमट के घने वन की ओर चले गये, किंतु जब पर्वतीय क्षेत्र में मुगल सेनाएं प्रवेश कर रही थी तो प्रताप वहां से भी निकल गये। भोमट से निकल कर प्रताप आबू के पहाड़ों की ओर चले गये। वहां से सुंधा पर्वत की ओर प्रयाण किया, वहीं जहां लोयणा के ठाकुर राव धवल ने उनका स्वागत किया और अपनी पुत्री का विवाह महाराणा प्रताप के साथ कर दिया। प्रताप ने वहां एक बावड़ी और बागीचे का निर्माण करवाया। इस सैन्य अभियान के दौरान शाहबाज खां को पहले की भांति मेवाड़ी सैनिकों के आकस्मिक धावों और लूटमार का शिक. ार होना पड़ा। शाहबाज खां ने उजड़े हुए मुगल थाने वापस स्थापित किये। इसी दौरान उसने तेजमल सिसोदिया के निवास पर कब्जा कर लिया और वहां भी थाना स्थापित कर दिया। इसके उपरांत भी तेजमल सिसोदिया ने शाहबाज खां को महाराणा प्रताप के ठहरने के स्थान का पता नहीं दिया। इस समय ताराचंद मालवे से दण्ड वसूल करने रामपुरे पहुंचे गया था, वहां शाहबाज खां ने उसको घेर लिया। ताराचंद घायल होकर वहां से निकल गया और बस्सी में शरण

ली। जहां रावत साईंदास देवड़ा ने उसको सुरक्षा प्रदान कर बस्सी ठहराया और उसका उपचार करवाया।

तीसरी बार भी शाहबाज खां मेवाड़ विजय अभियान में बुरी तरह असफल रहा। अकबर ने निराश एवं नाराज होकर उसको अगस्त 1580 ईस्वी में उसको मेवाड़ से बुला लिया और बंगाल एवं बिहार के उपद्रवों को दमन हेतु वहां भेज दिया। अगले तीन–चार माह बाद ही अजमेर के सुबेदार दस्तम खां की रणथम्भौर के निकट थोरी गांव के पास मुगल चौकी पर हुए हमले में हत्या हो जाती है। इसके बाद अकबर अब्दुर्रहीम खान–ए–खाना को अजमेर सूबे का सूबेदार नियुक्त करता है।

अब्दुर्रहीम खान–ए–खाना का अभियान

मिर्जा खां उर्फ अब्दुर्रहीम खान–ए–खाना अकबर का विश्वस्त सेनानायक और वली अहद था। मिर्जा खां अजमेर का सुबेदार नियुक्त होने से पूर्व शाहबाज खां के साथ मेवाड़ विजय अभियान में भाग ले चुका था। खान–ए–खाना ने बड़ी मुस्तैदी से कार्य करते हुए मैदानी भाग के शाही थाने पुनः सुदृढ़ कराये। खान–ए–खाना ने तो प्रताप के विश्वस्त सहयोगियों को अपनी ओर मिलाने का कुत्सित प्रयास भी किया। खान–ए–खाना भामाशाह को अपनी ओर मिलाने का लालच देता है किंतु उसमें वह सफल नहीं होता है।

दिवेर विजय से चावण्ड राजधानी बनाने तक (1581 से 1586)

खान–ए–खान के सीकरी लौटते ही महाराणा प्रताप दिसम्बर 1581 में गोगुन्दा की ओर लौटते है। यहां पर वह ढोलाण (ढोल) गांव को अपनी सैन्य गतिविधियों का केन्द्र बनाते हैं। यहां से वह कुम्भलगढ़ विजय की तैयारी करना आरम्भ करते हैं। इसकी तैयारी के लिए महाराणा प्रताप रूपनारायण जी व वोराट क्षेत्र को केन्द्र बनाकर सितम्बर 1582 ईस्वी से मेवाड़ में स्थापित मुगल थानों को उठाने के लिए घेराबंदी की योजना को मूर्त रूप देने का कार्य आरम्भ कर देते हैं। इसी समय अकबर सीकरी में रहते हुए खान–ए–खाना को वली–अहद सलीम का शिक्षक नियुक्त करता है तथा गुजरात और उड़ीसा के उपद्रव को शांत करने की योजना बनाता है। ऐसा सुअवसर पाकर महाराणा प्रताप कुम्भलमेर (कुम्भलगढ़) और मेवाड़ से मुगल को भगाने की सैन्य तैयारी आरम्भ कर देते हैं। इस योजना को पूरा करने में करीब एक वर्ष का समय लग जाता है और मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित मुगल थानों की घेराबंदी आरम्भ कर देते हैं। इसके साथ ही जब मुगलों को रसद की समस्या होने लगी तो मुगलों ने मेवाड़ के व्यापारिक और पारगमन के मार्गों की नाकेबंदी आरम्भ कर दी। ऐसे में मुगल क्षेत्र की सीमा बनाने वाले सभी नाकों पर मुगल थाने स्थापित हो गए, एक ओर रसद का अभाव और एक ओर मार्ग बंद हो जाने से अब मेवाड़ मुगल संघर्ष का अंतिम चरण आरम्भ होना अवश्यंभावी हो गया। राजस्थान के इतिहास में सोमवार 16 सितम्बर 1583 ईस्वी विजयादशमी को हुआ दिवेर का धावा एक महत्वपूर्ण संघर्ष माना जाता है, क्योंकि इस धावे के बाद राणा प्रताप ने खोये हुए राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए विजय अभियान प्रारम्भ कर दिया। यहां मुगलों पर विजय का तीन वर्ष लम्बा संघर्ष प्रारम्भ हुआ और आखिर में मुगल मेवाड़ से अपने सभी थाने उठाने पर मजबूर हो गए। इससे पूर्व सौभाग्य सक श्रावण शुक्ल द्वादशी विक्रम संवत 1640 तद्अनुसार 1 अगस्त 1583 ईस्वी, रविवार को महाराणा प्रताप के पुत्र महाराज कुमार अमर सिंह की कुंवरानी तंवर जी साहब कुंवर के गर्भ से कर्ण सिंह का जन्म हुआ। इस समय मेवाड़ राजपरिवार की सुरक्षा का जिम्मा अमरसिंह के पास था और वह सपरिवार मचींद स्थित गढ़ निवास कर रहे थे। यहीं पर कुंवर कर्ण सिंह का जन्म हुआ।

मेवाड़ के उत्तरी छोर का दिवेर का नाका अन्य नाकों से विलक्षण है। इसकी स्थिति मदारिया और कुंभलगढ़ की पर्वत श्रेणी के बीच है। इसे मेर का मगरा क्षेत्र कहा गया है। अतः इस पहाड़ी क्षेत्र में बसने वाले गुर्जर प्रतिहारमेर कहलाए और यह क्षेत्र मेरवाड़ा। इस क्षेत्र में मेर, देवड़ा, चौहान आदि राजपूतों के साथ ही जनजाति समुदाय भी बसा है। इस क्षेत्र में बसने वाली अन्य राजपूत जातियों में रावत, कठात, मेहरात व चीता भी शामिल है। इन विभिन्न समुदायों के दिवेर में बसने के कई कारण थे। प्रथम तो दिवेर का एक सामरिक महत्व रहा है, जो समुदाय शौर्य के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, वे उत्तरोत्तर अपने पराक्रम के कारण यहां बसते रहे और एक–दूसरे पर प्रभाव स्थापित करते रहे।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह रहा कि इसकी स्थिति ऐसे मार्गों पर है, जहां से मारवाड़, मालवा, गुजरात, अजमेर के आदान–प्रदान की सुविधा रही है। ये मार्ग तंग घाटियों वाले उबड़–खाबड़ मार्ग के रूप में आज भी देखे जा सकते हैं। इनके साथ सदियों से आवागमन होने से घोड़ों की टापों के चिन्ह पत्थरों पर अद्यावधि विद्यमान है। मार्गों में पानी की भी कमी नहीं है, जिसके लिये जगह–जगह झरनों के बांध के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से स्थान–स्थान पर चौकियों के ध्वंसाशेष भी दिखाई देते हैं। जब अकबर ने कुंभलगढ़, देवगढ़, मदारिया आदि स्थानों पर कब्जा कर लिया तो वहां की चौकियों से संबंध बनाए रखने के लिए दिवेर का चयन एक रक्षा स्थल के रूप में किया गया। यहां बड़ी संख्या में घुड़सवारों और हाथियों का दल रखा गया। इतर चौकियों के लिए रसद भिजवाने का भी यह सुगम स्थान था।

जब महाराणा प्रताप छप्पन के पहाड़ों को बसाने और मैदान को उजाड़ने में लगे थे, उसी समय अकबर ने मेवाड़ के उत्तरी भाग में अपने थाने मजबूती से स्थापित कर लिए। प्रताप छप्पन और मध्य मेवाड़ से मुगलों का निष्कासन करने में सफल रहे लेकिन दिवेर का मोर्चा कमजोर बना हुआ था।

महाराणा प्रताप ने अपने लिए धन की व्यवस्था करने और राज्य के विस्तार के लिए गुजरात और मालवा की ओर अपने अभियान भेजना आरंभ कर दिए। मालवा मूलतः मेवाड़ साम्राज्य का हिस्सा था और उसे मुगलों ने हथिया लिया था, ऐसे में वहां कर वसूलना बंद हो गया था। अतः प्रताप ने वहां से सैन्य बल से कर वसूलने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए महाराणा प्रताप ने भामाशाह और उनके भाई तारचंद कावड़िया का चयन किया। दोनों ने ही मालवे पर चढ़ाई कर मालवा से कर वसूल किया और राजकोष जो नीमच के निकट सुरक्षित था, उसके साथ जमा किया। इसकी पूरी राशि 25 लाख रुपए और 20 हजार अशर्फियां (इसमें कर और राजकोष सम्मिलित था) भामशाह और तार. चंद कावड़िया ने महाराणा प्रताप को चूलिया ग्राम (राजस्थान मध्यप्रदेश की सीमा पर चित्तौड़गढ़ जिले की भैंसरोड़गढ़ तहसील में स्थित) में समर्पित कर दी।

इसी दौरान शाहबाज खां निराश होकर लौट गया था और महाराणा ने कुंभलगढ़ और मदारिया के मुगली थानों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इन दोनों स्थानों पर महाराणा प्रताप का अधिकार करना उनकी आगामी योजना की तैयारी थी और अब दिवेर की बारी थी। दिवेर विजय के साथ ही मेवाड़ के मुगलों की टिमटिमाती लौ भी बुझने वाली थी, अतः प्रताप ने इसकी पूरी तैयारी की लेकिन मुगल सेनापति सुल्तान खां इसे समझ नहीं पाया। प्रताप ने पूर्ण सैन्य संगठन को उन्नत और नवीनीकृत कर दिया। जगह—जगह रसद और हथियार इकट्ठे किए गए। सैनिकों को धन और सुविधाएं उपलब्ध कराई गई। सिरोही, ईडर, जालोर के सहयोगी राजाओं से सैन्य सहयोग मांगा गया, सभी प्रबंध गुप्त रखे गए। मुगलों में भ्रम फैलाया गया कि प्रताप बस मेवाड़ छोड़कर जाने वाले हैं। ऐसे में मुगल सैनिक और चौकीदार प्रमाद में आ गए और चौकसी कम हो गई। तैयारियां पूर्ण होने के बाद महाराणा प्रताप ने अपना सेनापति महाराज कुमार अमरसिंह को नियुक्त किया और दिवेर की ओर प्रयाण किया। दिवेर के मार्ग को सुरक्षित करने, समय पर सूचना देने और शत्रु पर नजर रखने का कार्य परम्परानुसार भील सैन्य टुकड़ी और जासूसी दल को सौंपा गया। वे प्रत्येक नाके और चौकी पर नजर रखने लगे और उन्होंने दिवेर का सम्पर्क शेष मेवाड़ और मेरवाड़ा से काट दिया।

जब मेवाड़ की सेना दिवेर पहुंची तो इस अप्रत्याशित आक्रमण को देख कर मुगल सेना में भगदड़ मच गई और मुगल सैनिक दिवेर घाटी छोड़कर मैदानी भाग की तलाश में उत्तर के दर्रे से भागने लगे। महाराणा ने अपने दल के साथ भागती सेना का पीछा किया। घाटी का मार्ग इतना कांटों से भरा और उंचा—नीचा था कि सैनिक जल्द ही थक गए और मेवाड़ की सेना ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। करीब 36 हजार मुगल सैनिकों ने मेवाड़ की सेना के समक्ष आत्मसमर्पण किया या मारे गए। इधर दिवेर थाने को महाराज कुमार अमरसिंह ने घेर लिया था, मुगल सूबेदार सुल्तानखां के लिए बच निकलने की कोई जुगत ही नहीं बची। अमरसिंह और सुल्तान खां में आमने—सामने का संघर्ष हुआ। इस दौरान सौलंकी भृत्य पडिहार ने अपनी तलवार से सुल्तान खां के हाथी के दो पांव काटा दिए। उसके बाद सुल्तान खां घोड़े पर सवार होकर युद्ध करने लगा। इस समय कुंवर अमरसिंह ने सुल्तान खां पर भाले से ऐसा वार किया कि भाला सुल्तान खां को बींधता हुआ घोड़े के शरीर को पार कर गया। सुल्तान खां भाले में बींध कर हवा में लटक गया। अब महाराणा प्रताप भी दिवेर पहुंच गए और उन्होंने तड़पते सुल्तान खां को देखा तो अमरसिंह को आदेश दिया कि उसके शरीर से भाला निकाले ताकि उसकी सहज मृत्यु हो सके। इस पर अमरसिंह ने उसके सीने पर पैर रख कर भाला निकाला। अपने अंतिम समय में सुल्तान खां ने पानी मांगा तो प्रताप ने गंगाजल मंगवाकर उसे पिलाया। इसके साथ ही सुल्तान खां ने प्राण त्याग दिए। इस युद्ध में विजयश्री महाराणा प्रताप को मिली। यह महाराणा की यह विजय इतनी प्रभावी रही कि मेवाड़ के 36 मुगल थानों से अकबर की सेना को मारकाट कर भगा दिया। मेवाड़ में इधर—उधर आतंक फैला रही मुगल सेना लड़ती, भिड़ती, भूखे मरते उलटे पांव मुगल इलाकों की तरफ भाग खड़ी हुई।

दिवरे विजय के पश्चात् उठाए गए मुगल थाने

दिवेर

छापली

चीकली

मदारिया

देवगढ़

काजलवास

राणाकड़ा

राताखेत
कालागुमान
माणकवास
मोही
उंठाला
मांडल
जहाजपुर
मंदसौर
नीमच
गोगुन्दा
उदयपुर
केलवाड़ा
कुम्भलगढ़
लावलाई
नाडोल
बस्सी
मालपुरा
देवली
बिजौलिया
देसूरी
घाणेराव
ओड़ा
फौज बड़ली
बांधनवाड़ा
देबारी
खेरोदा

दिवेर विजय के बाद 1586 तक मेवाड़ का सैन्य संघर्ष

कार्तिक शुक्ल एकादशी, विक्रम संवत 1640 तद्अनुसार 27 अक्टूबर 1583 को महाराणा उदघ्यसिंहघ के पुत्र जगमाल, जो महाराणा प्रताप के भाई थे, सिरोही में राव सुल्तान देवड़ा से लड़कर मारे गए। इस बात की खबर मिलने पर मार्गशीर्ष शुक्ल 14 वि.सं. 1641 तद्अनुसार 6 दिसंबर 1584 ईस्वी को अकबर ने आंबेर के राजा भारमल के बेटे जगन्नाथ कछवाहे को पूरे निर्देशों के साथ बड़ा सैन्यदल मेवाड़ पर भेजा और मिर्जा जफर बेग को बख़्शी बनाकर उसके साथ कर दिया। इन्होंने मांडलगढ़, मोही, और मदारिया सहित मेवाड़ में करीब 80 मुगल थाने स्थापित किए, लेकिन महाराणा प्रताप ने भी जहां मौका पाया वहां इन लोगों से संघर्ष किया। कुछ समय पीछे सैय्यद राजू को सैन्य–सहित मांडलगढ़ छोड़कर महाराणा के निवास स्थान की तरफ हमले का आदेश मिला। जैसे ही सैय्यद राजू ने मांडलगढ़ छोड़ा महाराणा ने दूसरी ओर से मुगलों के अधिकार में आये हुए प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। जिस पर सैय्यद राजू, महाराणा से लड़ने के लिए पुनः मांडलगढ़ की ओर बढ़ा लेकिन महाराणा चित्तौड़ की तरफ चले। वहीं सैय्यद भी मांडलगढ़ लौट गया। दूसरी ओर जगन्नाथ कच्छवाहा भी महाराणा के निवास स्थान की ओर बढ़ा लेकिन विफल होकर सैय्यद राजू के पास लौट गया। जगन्नाथ कछवाहा करीब सवा वर्ष मेवाड़ में भटकता रहा। एक समय वह महाराणा के बिल्कुल निकट पहुंच भी गया था, लेकिन कुछ कर न सका। अन्त में निराश होकर वि.सं. 1642 (1585 ईस्वी) में वह कश्मीर को चला गया। इस बीच महाराणा प्रताप ने 1586 तक चित्तौड़, मांडल और अजमेर को छोड़कर मेवाड़ से सभी मुगल थाने उठा दिए।

मेवाड़ में खेती रोकने के आदेश

जब जगन्नाथ कछवाहा 1585 ईस्वी में मांडलगढ़ में मुकाम किये हुए था। उसी दौरान महाराणा प्रताप ने मेवाड़ में जनादेश जारी किया कि जो कोई एक बिस्वा जमीन पर खेती करके मुसलमानों को कर देगा उसका सिर काट दिया जाएगा। इस आदेश के साथ ही मेवाड़ में कृषि बंद हो गई। किसान सपरिवार दूसरे इलाकों में जा बसे। अब मुगल

सेना के लिए मेवाड़ में रसद प्राप्त करना असम्भव हो गया, अतः रसद अजमेर से मंगवाई जाने लगी। साथ ही मेवाड़ और मुगल दोनों के बीच लगातार धावे चलते रहे। जिसको जहां मौका मिला उसने उन्हें छोड़ा नहीं। मेवाड़ के ऊंटाले (वर्तमान वल्लभनगर) के थाने के मुगल थानेदार ने एक किसान से जबरन खेती करवाई, इसकी जानकारी मिलने पर प्रताप ने मुगल थाने में प्रवेश किया और मुगल सेना के बीच जाकर किसान का सिर काट दिया। इससे उन्होंने यह स्थापित कर दिया कि उनके राज्य में रहते हुए कोई उनके आदेश की अवहेलना नही ंकर सकता, चाहे वह मुगल सेना की सुरक्षा में ही क्यूं न हो। प्रताप पर मुगल सेना ने जोरदार हमला किया लेकिन प्रताप उनसे लड़ते हुए पुनः देबारी की पहाड़ियों में प्रवेश कर गए और मुगलों की उधर आने की हिम्मत नहीं हुई। इसके बाद पूरे मेवाड़ में एक तिनके की खेती भी नहीं हुई।

महाराणा का बेसेरपुर (शेरपुर) में मुकाम व खान–ए–खाना के परिवार का संरक्षण

महाराणा प्रताप जगन्नाथ कच्छवाहा के चावण्ड पर हमले के समय वहां से निकल कर ससैन्य बेसेरपुर (शेरपुर) पहुंचा। उस समय कुंवर अमरसिंह भी महाराणा प्रताप के साथ शेरपुर में ही थे। खान–ए–खाना के पालनपुर से आबू की ओर परिवार सहित शिकार खेलने आने की सूचना मिलने पर कुंवर अमर सिंह ने अचानक खान–ए–खाना के शि. विर पर धावा बोल दिया। अचानक हुए हमले से मुगल सेना तितर–बितर हो गई। अमरसिंह को यहां एक विशेष सफलता मिली कि मुगल सेना के भाग जाने की वजह से खान–ए–खाना का परिवार भी असहाय अवस्था में मिल गया, जिसक. ो बंदी बना लिया गया। जब प्रताप के पास इस बात की सूचना पहुंची तो प्रताप ने मिर्जा खां की स्त्रियों एवं बच्चों को ससम्मान एवं सुरक्षित वापस लौटाने के आदेश कुंवर को दिये। कुंवर ने उनको बहिन–बेटियों की तरह आदर एवं स्नेह देकर खान–ए–खाना के पास वापस भेज दिया। यह मुगलों के लिए आश्चर्य का विषय था। खान–ए–खाना राणा की उस उदारता एवं महानता से बड़ा प्रभावित हुआ। इस घटना से हमेशा के लिए प्रताप के प्रति श्रद्धा–भावना उत्पन्न हो गई, जो सदैव बनी रही। खान–ए–खाना ने निम्नलिखित दोहा राणा प्रताप की प्रशंसा में कहा, ऐसा माना जाता है।

धरम रहसी रहसी धरा, खप जासी खुरसाण।
अमर विशम्भर ऊपरे, राख निहच्चौ राण।।

दिवेर विजय के प्रभाव

जहां हल्दीघाटी का युद्ध नैतिक विजय और परीक्षण का युद्ध था, वहां दिवेर का युद्ध एक निर्णायक युद्ध बना। इसी विजय के फलस्वरूप संपूर्ण मेवाड़ पर महाराणा का अधिकार स्थापित हो गया। दिवेर की विजय ने यह प्रमाणित कर दिया कि महाराणा का शौर्य, स्वाधिनता, स्वतंत्रता, संकल्प और वंश गौरव अकाट्य एवं अमिट है, इस युद्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि महाराणा के न्याय, त्याग और बलिदान की भावना के नैतिक बल ने सत्तावादी आक्रांताओं की अन्यायपूर्ण नीति को परास्त किया। कर्नल टॉड ने जहां हल्दीघाटी को 'थर्मोपल्ली' कहा है वहां के युद्ध को 'मेरोथन' की संज्ञा है, जिसे हमें स्वीकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि मेवाड़ की लड़ाई धर्म, न्याय और नीति के उद्देश्य पर केन्द्रित थी लेकिन वहीं दूसरी ओर यूनान की दोनों लड़ाइयां अनीति अहंकार का प्रतीक है। इसलिए नैतिक दृष्टिकोण से दोनों युद्ध के आदर्शों में इतनी भिन्नता है कि किसी प्रकार की तुलना सम्भव नहीं है। कर्नल टॉड ने भारतीय युद्ध परम्परा के ज्ञान के बिना यह तुलना की है, इसलिए उनकी आलोचना नहीं समालोचना होनी चाहिए।

1586 से 1597 तक प्रताप द्वारा पुनः मेवाड़ बसाना

महाराणा ने 1585–86 ईस्वी में घोर वनांचल में स्थित चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया और तत्पश्चात उन्हें लोकहित में निरन्तर कार्य का अच्छा अवसर मिला। दिवेर की विजय महाराणा के जीवन का एक उज्ज्वल कीर्तिमान है। वहीं चावण्ड को राजधानी बनाने के बाद मेवाड़ में शासन के 12 वर्ष बड़े विशिष्ट हैं, क्योंकि इसमें उन्होंने शिल्प निर्माण, लोक निर्माण, ललित कला विकास, नगर निर्माण, मंदिरों का निर्माण और जीर्णोद्धार, गढ़ों का निर्माण कराया। साथ ही चक्रपाणि मिश्र जैसे विद्वान को अपने दरबार में स्थान दिया जिसने 'विश्ववल्लभ', 'मुहूर्तमाला', 'व्यवहारदशा' और 'राज्याभिषेक पद्धति' जैसी पुस्तकों का लेखन किया और मेवाड़ के पुनःनिर्माण में विशिष्ट योगदान दिया।

मंदिरों का जीर्णोद्धार

हरिहर मंदिर, बदराणा

कमलनाथ महादेव, मगवास

एकलिंगनाथ, आमोड़

त्रिविक्रम देव मंदिर सुरखण्ड का खेड़ा

चेटक की समाधि, वलीचा, खमनोर

झाला मान की छतरी, रक्त तलाई, खमनोर
चामुण्डा माता का मंदिर चावण्ड
नीलकण्ठ महादेव मंदिर, उदयपुर
लोयणा में बावड़ी व बगीचे का निर्माण (सुंधा पर्वत जालौर)
नगर बसाए
बदराणा (बीदाराणा)
चावण्ड
उदयपुर
दुर्ग निर्माण कराए
आवरगढ़
सरवण
मचींद
सरूपाल
प्रताप का शिलालेख

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, वि.सं. 1630 (जून 1573 ईस्वी) को महाराणा प्रताप ने एक ब्राह्मण को भूमिदान का उल्लेख कृष्ण पक्ष 3, वि.सं. 1634 (1577 ईस्वी) अपने पुरोहित राम को ओड़ा गांव की जागीर दी भगवान काशी को पुण्यार्थ दिया। पंचोली जेता ने ओड़ा से मुगलों का थाना हटाया था। चूंकि यह पुरोहित राम की जागीर का गांव था, इसलिए पुनः उन्हें दिया गया।

फाल्गुन शुक्ल पंचमी, वि.सं. 1639 (मार्च, 1583 ईस्वी) को महाराणा प्रताप ने मृगेश्वर गांव (मीरघेसर) प्रदान किया।

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी, विक्रम संवत 1642 रणछोड़ राय मंदिर प्रशस्ति, सुरखण्ड का खेड़ा, सराड़ा।

महाराणाधिराज प्रताप सींघजी ने राठड़ का रा, ज पराजि कर सिसोदीय, ण का राज संवत 1642, में राज प्रताप की, आ सुरखंड नगरे पर, राज काद उस समे, मुगल अकबर, के विषात सेनापती रा, मानसेह को सात जुद, था महाराणाजी अस वज, पइ ऊ खुसी में रनसड़, जी का मदीरा डोरी थ 3, स का प्रसद की आलु, बी हल 4 पुजारी कुव, र को दा जेठ सुकल–11।

अर्थात्

महाराणाधिराज प्रतापसिंह ने राठौड़ का राज्य पराजित कर सिसोदियों का राज संवत् 1642 में राज का प्रताप (प्रताव) किया। उस समय अकबर के विख्यात सेनापति मानसिंह के साथ युद्ध किया। महाराणा जी इस युद्ध में विजयी हुए। इसी प्रसन्नता में रणछोड़जी का मन्दिर की डोहली का प्रसाद किया। लुबी (भूमि) 4 हल पुजारी के पुत्र को दी। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी।

जगन्नाथराय मंदिर उदयपुर की प्रशस्ति (वैशाख पूर्णिमा, वि.सं. 1708 तद्अनुसार 13 मई 1652 ईस्वी)

कृत्वा करे खड्ङ्गलतां स्ववल्लभां, प्रतापसिंहे समुपागते प्रगे।
सा खण्डिता मानवती द्विषच्चमः, संकोचयन्ती चरणं पराङ्मुखी। श्लोक सं. 41।

अर्थ – अपनी प्रियतमा खड्गलता (तलवार रूपी वल्लरी) को हाथ में लेकर प्रतापसिंह के रण भूमि में आ जाने पर खण्डिता नायिका के समान मानिनी (रुठी हुई) मानसिंह से मुक्त शत्रु सेना अपने पैर को सिकोड़ते हुए पराङ्मुखी (पीछे मुंह कर भागने वाली) हो गई।

वैद्यनाथ मंदिर प्रशस्ति, सीसारमा (वि.सं. 1772 माघ सुदी 12, गुरुवार)
प्रतापसिंह होऽथ व भूव तस्माद्धनुर्धरो धैर्यधरो धरिण्याम्।
म्लेच्छाधिपात् क्षत्रिकुलेन मुक्तोधर्मोप्यथैनं शरणं जगाम्।। 34।।
प्रतापसिंहेन सुरक्षितोऽसौ पुष्ठः परं तुदिलतामगछत्।
अकब्बर म्लेच्छगणधिपस्य परं मनः शल्यमिवाभवद्यः ।। 35।। (26 जनवरी, 1716 ईस्वी)

अर्थ – उदयसिंह से प्रतापसिंह हुए। यह पृथ्वी पर धनुर्धारी तथा धैर्यवान् के रूप में (प्रसिद्ध) हुए। क्षत्रिय कुल के द्वारा म्लेच्छ शासक से धर्म को मुक्त कराया। इस धर्म ने इसकी (प्रताप की) शरण ली।। 34।।
प्रतापसिंह के द्वारा धर्म को सुरक्षित रखा गया। पुष्ट किया गया, जिससे वह तोंद वाला (बड़ा) हो गया। म्लेच्छाधिपति अकब्बर के लिये प्रताप मन में घुसा हुआ कांटा हो गया।। 35।।
रणछोड़ भट्ट प्रणत अमरकाव्यम् (सर्ग– 16, श्लोक सं. 35)

रणभुवि समुपेतं धन्य सेना समेतं, वरागत यवनेशं भूपतिर्मानसिंहम्।
पवन बल निदानं म्लेच्छनाथैकतानं, दलित समरमानं शौर्यशाणं ततान।।35।।

अर्थ – प्रतापसिंह युद्धभूमि में सेना सहित आये हुए यवनपति को वश में करने वाले, यवन सेना के निदान (पहचान), यवनपति को एकमात्र तान (मुखिया) मानसिंह का युद्ध में अभिमान चूर्ण कर वीरता रूपी शान का विस्तार किया।

राज रत्नाकरः महाकवि सदशिव (वि.सं. 17) सप्तम सर्ग श्लोक 42
अरिपट भवनाद् गृहीतवितः, पुनखलोकित सम्पराय भूमिः।
स समर विजयी यर्यो महीश, उदयपुरणभिमुखः प्रतापसिंहः।।42।।

अर्थ– शत्रुओं के तम्बुओं से धन लेकर तथा युद्ध भूमि का पुनः अवलोकन कर वह पृथ्वीपति प्रतापसिंह युद्ध में विजयी होकर उदयपुर की ओर चल पड़ा।

मेवाड़ की कृषि परम्परा का पुनःउद्धार

पंडित चक्रपाणि मिश्र ने महाराणा प्रताप के शासन काल में 1577 ईस्वी में मेवाड़ की कृषि परम्परा के पुनःउद्धार के लिए विश्ववल्लभ ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है और इसके नौ उल्लास (अध्याय) है। यह ग्रंथ हमें वृक्षारोपण विषयक ज्ञान देता है। साथ ही चक्रपाणि मिश्र को वनस्पति शास्त्री के रूप में स्थापित करता है। ग्रन्थकर्ता विभिन्न वृक्ष, वनस्पति की प्रकृति, वनस्पति के औषधीय गुण–धर्मों के मर्मज्ञ एवं पादप विज्ञान, उद्यान विज्ञान विशेषज्ञ, वास्तु विज्ञान, जलाशय तथा जलस्रोतों के निर्माण का विशद वर्णन अपने ग्रंथ में करता है। चक्रपाणि मिश्रा महाराणा प्रताप के दरबारी पंडित थे। वह एक माथुर ब्राह्मण थे और नासावारे चौब परिवार के थे। उनकी पत्नी का नाम सौभाग्यवती था। वे हल्दीघाटी और दिवेर के युद्ध में प्रताप के साथ थे। उन्होंने महाराणा प्रताप के कहने पर विश्ववल्लभ के अतिरिक्त कई ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'मुहूर्तमाला', 'व्यवहारदशा' और 'राज्याभिषेक पद्धति' जैसे ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

'विश्व वल्लभ' ग्रंथ में खेतों और वाटिकाओं के नियोजित विकास पर जोर दिया गया है। पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाए रखने के लिए इसकाल में कृषि और वृक्ष विद्या को प्रश्रय देने का प्रयास हुआ। विश्ववल्लभ को मध्यकालीन भारत का पर्यावरण और कृषि शास्त्र माना जा सकता है और विश्व को पर्यावरण के क्षेत्र में यह अपूर्व योगदान है। इसमें नौ अध्यायों (उल्लासों) में भूमिगत जलशिरा, जल शुद्धि, बांध–कुण्ड आदि जलस्रोतों के निर्माण, वृक्षारोपण विधि, वृक्षों की पोषण तकनीक, रोगी वृक्षों की चिकित्सा की विधियाँ, वृक्षों की रक्षा, विचित्र पौधों को तैयार करना, बीजोपचार जैसे महत्वपूर्ण विषयों को लिखा गया है।

विश्ववल्लभ से महाराणा प्रताप की कृषि नीति का पता चलता है। तत्कालीन जनसामान्य में आत्मनिर्भरता के लिए कृषि, फलोत्पादन की प्रचुरता को जरूरी माना जाता था और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार अनूप, जांगल, मिश्र और पर्वतीय प्रदेशों के आधार पर जो उचित हो, वैसी खेती–बाडी करना उचित माना गया था। यह ज्ञातव्य है कि महाराणा प्रताप ने उस दौर में कृषि नीति का प्रवर्तन किया और कृषि उन्नयन पर जोर दिया जब युद्ध के बाद के हालात थे, जनता या तो दरबदर थी या फिर हालात सतत् मुगल आक्रमणों से पदाक्रान्त थे। मैदानी इलाकों में खेती के न तो हालात थे और न ही खेती सम्भव और निरापद थी। 'दैवं वा कर्षणम्' अर्थात भाग्य अथवा कृषि अथवा 'देवता रा वर चालै अर करसा रा हल' इस कहावत के आधार पर खेती की महत्ता को मेवाड़ में समझा जाता रहा है।

प्रताप ने नकदी फसलोत्पादन पर ध्यान केन्द्रित किया। यइ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि तब नकद लेन–देन अपेक्षाकृत कम था ओर सिक्कों को ढालने के लिए टकसालें बन्द हो चुकी थीं। ऐसे में राज्य की आत्मनिर्भरता के लिए खेती और खदान ही मुख्य आधार थे। बारम्बार हमलों के दौर में भूमि का कोई छोर कृषि के लिए उपयुक्त नहीं बचा तब वृक्षों को स्थायी या दीर्घकालीन उत्पादन प्रदायक माना जा सकता था। गांव के गांव खाली करवाकर लोगों को अपेक्षाकृत निरापद मालवा की ओर सुरक्षा के लिहाज से भेजा जाता था, जैसा कि 'वीर विनोद' संकेत देता है। ऐसे में युद्ध को टालने के साथ ही वनबहुल फलोत्पादन पर विचार बहुत उपयुक्त था। यूं ही मेवाड़ जनजाति बहुल रहा है और जंगल में बसे लोग जंगल के उत्पाद को एकत्रकर जीवनयापन करते रहे। जन सामान्य के लिए कृषि अथवा वनौपज आजीविका का मुख्य साधन रहा है।

विश्ववल्लभ में पेड़, पौधे, वृक्ष, गुल्म–लता, विरूध, त्वक आदि वनस्पतियों से होने वाले फलोत्पादन को दृष्टिगत रखा गया है और उनके श्रेष्ठ फल प्रदायक होने के लिए अनेक बातें पालनीय बताई गई हैं । यथा–

1. कृषिकार्य के लिए श्रेष्ठतम बीज उपलब्ध हों और बीजों का उचित उपचार करके ही बोया जाना चाहिए। बीजो में किसी भी प्रकार की मिलावट नहीं की जाए, यह मनुस्मृति का भी निर्देश रहा है।

2. उर्वरक, खाद पर उत्पादन का बहुत प्रतिशत निर्भर करता है, अतः पुरीष (गोबर आदि खाद), कुपण जलादि (विशिष्ट प्रकार के सहज–साध्य उर्वरक) विधियों को अपनाया जाए और राजकीय स्तर पर इसे प्रचारित और प्रोत्साहित

किया जाए।

3. खेती–बाड़ी की समयबद्ध सिंचाई के लिए उचित प्रबन्धन हों। नगर, ग्रामानुसार सिंचाई के लिए जलस्रोतों का विकास किया जाए और पेयजल और सिंचाई के लिए प्रदूषण रहित पानी का उपयोग किया जाए।

4. खेती में विचित्रीकरण जैसे प्रयोग इसलिए भी हों कि किसान, जनता उन प्रयोगों से लाभान्वित हों और विशेष प्रयोगों को देखकर प्रेरणा प्राप्त करें।

5. कृषि क्षेत्र और बगीचा आदि को उजाड़े जाने पर पुनः रोपण की अपेक्षा जो वृक्षादि नष्ट हो गए हों, उनको ही पुनः जीवित और फलदायी बनाने का प्रयास किया जाए, इससे समय की बचत होती है। इस कार्य पर निरीक्षणात्मक दृष्टि रखी जानी चाहिए।

6. फसलों, पेड़–पौधों में होने वाली इति–व्याधि, रोगों के उपचार तथा आन्तरिक व बाहरी कीटों के नियन्त्रण के लिए तत्काल व प्रभावी उपाय किए जाएँ ताकि उत्पाद प्रभावित नहीं हों।

प्रताप के काल में कृषि विकास का सम्बन्ध तत्कालीन आबादी की आवश्यकता की पूर्ति से ही नहीं, आबादी द्वारा समय–समय पर बदले जाने वाले आवास (मुकाम) और शासकीय स्कन्धावार (विजय कटक रा डेरा, छावनियों) के महत्व अथवा नगर आदि बस्तियों के विकास के साथ–साथ हवाला खेती (शासनाधिकृत खेती) भी जुड़ा हुआ दिखाई देता है। ऐसे में खेती चूंकि मूलतः वृष्टि आधारित रही है तो वृक्ष चिरकाल पर्यन्त उत्पाद दे सकते हैं अतः फलदायी वृक्षों की वाटिकाओं के विकास पर ध्यान दिया गया।

इस काल में कृषि के विकास के लिए रोग रहित, उन्नत और उपचारित बीजों के उपयोग पर जोर दिया गया। वहीं कृषि क्षेत्र के विस्तार पर भी ध्यान दिया गया। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार को प्राथमिकता दी गई। खाद व कृमि–कीटादि नाशक औषधियों को प्रयोग भी किया गया। कलम लगाकर विचित्र फलोत्पादन करने की विधियाँ भी प्रच. ारित की गईं।

इसी ग्रन्थ से विदित होता है कि मेवाड़ में कपास उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया था। कपास की खेती के लिए कपासन को विशेष पहचान मिली और उसके पास ही गोदियाणा जैसा गाँव महाराणा प्रताप द्वारा दान करने का ताम्रपत्र भी प्रकाश में आया है। इस समय कपास के फूलों को पीला, लाल और नीला करने के प्रयोग भी किए गए। मेवाड़ में कृषि में किसी प्रकार के प्रयोग का पहला साक्ष्य विश्ववल्लभ से ही सामने आता है। बिजली के गिरने से नाक. ारा माने गए वृक्षों से फल उत्पन्न करना, बांझ वृक्षों को फलदायी बनाना और वृद्ध वृक्षों से फल लेने जैसे प्रयोग की सफलता इस काम की बड़ी विशेषता है। इसी काल में शाक–सब्जियों की पैदावार बढ़ाने और प्रजातियों के विकास के प्रयास भी हुए। बिना गुठली और बिना अस्थि के गाजर आदि उत्पाद लेने के प्रयोग किए गए। अधिकाधिक तिलोत्पादन सहित जौ, दाल और सरसों ही नहीं अनेक प्रजाति के पुष्पों की पैदावार में इजाफे के अनुभव आधारित प्रयोगों–योगों को लिखता हुआ ग्रंथकार चक्रपाणि मिश्र यह स्वीकारता है कि वह व्यावहारिक विधियों को ही लिख रहा है।

ग्रन्थ का विषय नौ उल्लासों में विभक्त है –

प्रथम उल्लास – उदर्गल निरूपण (जल विद्या)।

द्वितीय उल्लास – वास्तुशास्त्रस्य संवादी (जलाशय निरूपक)।

तृतीय उल्लास – भूमि परीक्षादुविहितस्य निरूपक (भूमि परीक्षा विधि)।

चतुर्थ उल्लास – संक्षिप्तकियतामुक्तोदृमाणां (द्रुम रोपण विधि)।

पंचम उल्लास – सेचनादिविधिकालावस्थादि भेद (सिंचाई विधि)।

षष्ठ उल्लास – तरुरक्षा निरूपक (रक्षा विधि)।

सप्तम उल्लास – पौषणादिदिधिः (पोषण विधि)।

अष्टम उल्लास – द्रुमाणाम् चिकित्सा विधि (चिकित्सा विधि)।

नवम उल्लास – दुमचित्रीकरण (चित्रीकरण)।

यह ग्रन्थ वर्तमान में अनुसन्धान का विषय है, जो आधुनिक कृषि विशेषज्ञों के लिए आज भी अनुसन्धान में सहायक है।

प्रताप द्वारा चावण्ड चित्रकला शैली का विकास

चित्रकला में चावंड शैली का आरम्भ प्रताप के काल में होता है और अमर सिंह प्रथम के शासनकाल में यह पूर्ण विस्तार प्राप्त करती है। यही शैली मेवाड़ी कलम का आधार बनी और आज भी मेवाड़ी कलम में चावण्ड की चित्रकारी का पूर्ण प्रभाव नजर आता है। इन्हीं के काल में प्रसिद्ध चित्रकार निसारदीन ने रागमाला का चित्रण किया था। निसारद. ीन ने चावंड में रहते हुए महाराणा प्रताप और उनके बेटे राणा अमरसिंह के लिए 1585 से 1609 तक काम किया।

निसारदीन का कार्य मुगल दरबार के चित्रों की तुलना में अत्यंत उच्च श्रेणी का है और उसका रंग संयोजन पूर्ण भारतीय है। निसारदीन द्वारा चित्रित रागमाला के अलावा कोई अन्य शृंखला नहीं मिलती है लेकिन रागमाला तत्कालीन मेवाड़ के वैभव, सौन्दर्य और समाज तीनों अंगों का बहुमुखी रुप से चित्रण करती है।

चावंड रागमाला राजपूत शैली से विशिष्ट मेवाड़ शैली में परिवर्तन का प्रतीक है। यह जीवंतता, भावना और कथात्मक समृद्धि को दर्शाती है। यह सबसे पुरानी प्रलेखित राजस्थानी रागमाला शृंखला है। यह अब तक निर्मित सबसे प्रसिद्ध मेवाड़ लघु चित्रों में से एक है। शृंखला में अभिलेख हैं जो निसारदीन के काम का श्रेय देते हैं। हालांकि, इसमें संरक्षक का नाम नहीं बताया गया है। इतिहासकारों का अनुमान है कि इसे संभवतः महाराणा प्रताप व महाराणा अमर सिंह ने बनवाया था।

चावण्ड शैली, हालांकि विशिष्ट थी, लेकिन यह पहले से ही सुस्थापित राजपूत शैली में चित्रकारी का विस्तार थी। पूर्व प्रकाशितलौर–पंचसिका शृंखला, भैरवी रागिनी और वसंत विलास (वसंत का त्यौहार) की यह अनुगामी दिखाई देती है। ये सभी भी मेवाड़ में ही विकसित हुई थी और महाराणा कुम्भा के काल में 1451 से चली आ रही थी।चावंड रागमाला मेवाड़ शैली के कलात्मक विकास की सुबह का भी संकेत देती है। निसारदीन के उत्तराधिकारी साहिबदीन ने उनकी शैली को आगे बढ़ाया और उसे और परिष्कृत किया।

चावण्ड रागमाल की विशेषता

चावंड रागमाला कई श्रेणियों में पहली थी। यह क्षैतिज पोथी लेआउट से अलग थी जो कि लौरपंचिका जैसी पिछली राजपूत कृतियों की पहचान थी। इसके बजाय, निसारुद्दीन ने इस शृंखला को सासानिक लघुचित्रों के समान एक ऊर्ध्वाधर प्रारूप में चित्रित किया। उन्होंने मुगल शैली से लेकर राजस्थानी कला तक कई नए चित्रात्मक उपकरण पेश किए।मुगल शैली के नाजुक प्रकृतिवाद, सुंदर पेस्टल रंग पैलेट और सावधानीपूर्वक रचित यथार्थवादी विषयों कीनकल करने के स्थान पर निसारदीन ने ज्वलंत प्राथमिक रंगों, एकल रंग के बड़े–बड़े नमूनों और अतिरंजित शैलीकरण के साथ प्रभावी मेवाड़ी शैली को बनाए रखा।

निसारदीन की लघुचित्र शैली

निसारदीन की चावंड रागमाला को राजस्थानी लघु चित्रकला के क्षेत्र की नींव रखने वाला कहा जा सकता है। उनके रंग पैलेट बोल्ड और चमकीले रत्नों से भरे हुए हैं। मिट्टी के जैतून और गेरू रंग चमकीले लाल और गहरे नीले रंग के विस्फोटों के साथ खेलते हैं। उनकी रचनाएँ कोणीय और द्वि–आयामी थीं। ये सघन दृश्य संयोग से मिस्र के पपीरस चित्रों से मिलते जुलते हैं।चावंड रागमाला अपने संदेशों को अपने विषयों के हाव–भाव और मुद्राओं के माध्यम से संप्रेषित करती है। निसारदीन रचनाओं को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए व्यवस्थित नहीं करते हैं। बल्कि, वे उन्हें अधिकतम नाटकीयता के लिए रखते हैं। शैलीगत रूप से, यह लौरपंचसिका के साथ बहुत कुछ साझा करता है।

चावंड रागमाला में प्रतीकात्मकता और प्रभाव

चावंड रागमाला के पन्नों में पेड़, पक्षी और हिरणों की भरमार है। पृष्ठभूमि में मेवाड़ साम्राज्य की हरी–भरी वनस्पतियां और उपजाऊ परिदृश्य हैं। फूलों के गुच्छे, शैलीगत वनस्पतियाँ और जीव–जंतु, और फारसी शैली की भूमि विशिष्ट मेवाड़ रचना के पूरक हैं। निसारदीन ने सभी आकृतियों को बोल्ड और आत्मविश्वास से भरे लाल स्ट्रोक के साथ चित्रित किया, जो नाजुक फारसी और मुगल चित्रों से बहुत अलग था। मानव आकृतियों को अक्सर प्रोफाइल दृश्य में चित्रित किया जाता था, जिसमें अंडाकार चेहरे, लंबी नाक और केवल एक लम्बी, मछली जैसी आँख दिखाई देती थी। यह विशेषता पहले से प्रचलित अपभ्रंश शैली के समान है। महिलाएँ पुरुष पात्रों की तुलना में छोटी और कम कद की होती हैं।चावण्ड शैली में परिधान भी स्थानीय प्रभाव के साथ दिखाई देते हैं। घाघरा,कुर्ती–कांचली और ओढ़नी या लूगड़ी महिलाओं के परिधान है। पुरुष पगड़ी और कढ़ाई वाले पटके (बेल्ट) के साथ ढीले अंगरखे और धोती या पायजामा पहने दिखाई देते हैं।

अंतिम समय और मृत्यु

महाराणा का देहान्त किसी बीमारी से हुआ यह अनिश्चित है। लोकश्रुति के अनुसार विक्रम संवत 1653 के उत्तरार्ध में महाराणा प्रताप चावण्ड से जावर की पहाड़ियों में एक बाघ द्वारा मवेशियों के भीषण शिकार करने की सूचना मिली। इस पर महाराणा प्रताप बाघ के शिकार के लिए जावर की पहाड़ियों की ओर रवाना हुए। वहां प्रताप की बाघ से सीधी मुठभेड़ हो गई। उसमें महाराणा प्रताप ने एक हाथ से बाघ के वार को रोका और दूसरे हाथ से कमरबंध से कटार निक. ाली ओर बाघ का पेट फाड़ दिया। इस दौरान झटका लगने से उनके पेट की आंत में गांठ पड़ गई। इससे वे भीषण रूप से उदर रोग से पीड़ित हो गए। उन दिनों उनके स्वामिभक्त सरदार, जो उनकी आपत्ति के समय साथ रहे थे, उनके पास बैठे रहते थे। अंतिम दिन वह अत्यन्त दुःखी थे और उनके प्राण शान्ति से प्रयाण नहीं कर रहे थे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर सरदारों को दुःख हो रहा था, जिससे सलूंबर के रावत किसनदास ने साहस कर पूछा—'क्या कारण है कि आपके प्राण शान्ति के साथ इस शरीर को नहीं छोड़ते?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरी चिंता यह है कि मेर बाद मुगलों से संघर्ष आप सभी अमरसिंह का साथ दोगे। इस पर सभी सरदारों ने एक स्वर से बापा रावल की गद्दी की शपथ लेकर अमरसिंह के नेतृत्व में युद्ध जारी रखने का प्रण लिया। यह बात सुनकर महाराणा प्रताप को शांति का अनुभव हुआ और इसी वार्तालाप के दौरान ही उन्होंने देह त्याग दी। महाराणा प्रताप ने माघ शुक्ल एकादशी 11 वि.सं. 1653 तद्अनुसार 19 जनवरी 1597 ईस्वी देवलोक गमन किया। चावंड से डेढ़ मील दूर बंडोली गांव के निकट बहने वाले एक नाले के तट पर महाराणा का अग्नि—संस्कार हुआ, जहां उनके स्मारक के रूप में सफेद पत्थर की आठ स्तम्भ वाली एक छत्री बनी हुई है। इतिहासकार भूरसिंहशेखावत ने अपनी पुस्तक महाराणाप्रकाश में लिखा कि ईश्वर की माया अपार है कि जो वीर मुसलमानों के साथ की अनेक लड़ाइयों में कभी घायल न हुआ और अपनी तलवार से अनेक वीरों को मृत्युशैय्या पर सुलाता रहा, वही वीर कमान खींचने से बीमार होकर इस संसार से सदा के लिये विदा हो गया।

जब महाराणा के देवलोक का समाचार सुनकर अकबर उदास हो गया। उसे उदास देखकर दरबारी लोगों को आश्चर्य हुआ कि राणा की मृत्यु से तो बादशाह को प्रसन्न होना चाहिये था न कि उदास। उस समय चारण दुरसा आढ़ा ने, जो वहां उपस्थित था, नीचे लिखा हुआ छप्पय कहा—

अस लेगो अणदाग पाग लेगो अणनामी।
गो आडा गवड़ाय जीको बहतो घुरवामी।।
नवरोजे न गयो न गो आसतां नवल्ली।
न गो झरोखा हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली।।
गहलोत राणा जीती गयो दसण मूंद रसणा डसी।
निसा मूक भरिया नैण तो मृत शाह प्रतापसी।।

इतिहासकारों की दृष्टि में प्रताप

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग एक पृ. 442)

हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की लड़ाई का मुसलमानों द्वारा लिखा वर्णन एक पक्षीय होता है, तो भी मुसलमानों के कथन से ही निश्चित है कि शाही सेना की बुरी तरह दुर्दशा हुई और महाराणा प्रतापसिंह के लौटते समय भी उस सेना की स्थिति ऐसी न रही थी कि वह पीछा कर सके और उसका भय तो उस सेना पर यहां तक छा गया था कि वह यही स्वप्न देखती थी कि राणा पहाड़ के उपर रह कर हमारे मारने की घात लगाए बैठा है। दो दिन बाद 21 जून को मुगल सेना के गोगुन्दा पहुंचने पर भी मुगल अफसरों को यही भय बना रहा कि कहीं राणा आकर हमारे पर टूट ना पड़े। इसी से उस गांव के चौतरफा खाई खुदवा कर घोड़ा न फांद सके इतनी ऊंची दीवार बनवाई और गांव के तमाम मोहल्लों में आड़ खड़ी करवा दी गई। फिर भी शाही सेना गोगुन्दा में कैदी की भांति सीमाबद्ध रही और अन्त तक न जा सकी। जिससे उसकी और भी अधिक दुर्दशा हुई। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि युद्ध में प्रतापसिंह की ही प्रबलता रही थी।

अब्दुल कादिर बदायूंनी (मुन्तखाब उल तवारीख के अनुसार)

इस वक्त हमारी सेना की पूरी तरह हार हो गई। राणा ने घाटी से निकलकर गाजी खां की सेना पर हमला किया और उसकी सेना का संहार कर उसके मध्य तक जा पहुंचा, जिससे सीकरी के शहजादे, शेख मंसूर, गाजी खां आदि भी भाग निकले। हमारी फौज तो पहले हमले में ही भाग निकली। बनास नदी के उस पार तक भागती रही। ... .जब युद्ध का समाचार ले कर मैं अकबर के पास जा रहा था तब मार्ग में मुगल विजय के बारे में बताता तो कोई इस पर विश्वास नहीं करता और मेवाड़ की जनता पूरे मार्ग हम पर मिट्टे के ढेले बरसाकर हमारा अपमान करती रही।

कर्नल जेम्स टॉड (एनाल्स एण्ड एंटिक्विटज ऑफ राजस्थान, पृ.सं. 334)

18 जून 1576 ई. सन का दिन आर्य कुल की वीरता का एक प्रसिद्ध दिवस है। यह आर्य गौरव का एक पवित्र पर्व हुआ। जितने दिन तक मनुष्य वीरता और महानता की पूजा करेंगे, जितने दिन जगत में राजपूत जाति रहेगी, उतने दिन तक इस उपरोक्त दिन का वृतांत मनुष्यों के इतिहास में प्रकाशमान और रक्त मिश्रित अक्षरों से लिखा रहेगा। यह दिन अनन्त काल तक प्रकाश करेगा। उस दिन उस पुण्य भूमि हल्दीघाटी के शैलगात्र और समस्त गिरि मार्ग मेवाड़ के साहसी पुत्रों के पवित्र शोणित से भीग गये थे। हल्दीघाटी युद्ध राजस्थान की थर्मोपल्ली था।

कविराज श्यामल दास, उदयपुर (वीर विनोद भाग दो, पृ. 164–165)

इन महाराणा का कद लम्बा और पुष्ट, आंखें बड़ी, चिहरा और मूंछें बड़ी, हाथ लम्बे, और सीना चौड़ा था, पुराने रिवाज के मुवाफिक डाढ़ी नहीं रखते थे और रंग गेहुवां था। चिहरे पर ऐसी तेजी थी कि तस्वीर देखकर अब भी हर एक आदघ्मी पर रोब छा जाता है। इनके बेटे यानी महाराज कुमार नीचे लिखे मुवाफिक थे–

महाराणी अजबांदे पंवार के गर्भ से अमरसिंह और भगवानदास, महाराणी सोलंखिणी पूर बाई के गर्भ से सहसा और गोपाल, महाराणी चंपाबाई झाली के गर्भ से कचरा, सांवलदास और दुर्जनसिंह, महाराणी जसोदाबाई चहुवान के गर्भसे कल्याण– दास, महाराणी फूलकुंवर राठौड़ के गर्भ से चांदा व शैखा, महाराणी शाहमती बाई हाड़ी के गर्भ से पूरा, महाराणी खींचण आसाकुंवर के गर्भ से हाथी और रामसिंह, महाराणी आलमदे चहुवान के गर्भ से जसवन्तसिंह, महाराणी रत्नावती बाई परमार के गर्भसे माना, महाराणी अमराबाई राठौड़ के गर्भ से नाथा और महाराणी लखाबाई राठौड़ के गर्भ से रायभाण का जन्म हुआ।

अबुल फ़ज़ल अल्लमी, आगरा (अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द 3, पृ. 244)

उसको अपने पूर्वजों की वीरता पर गर्व था। उसका आदर्श था कि बापा रावल का वंशज किसी के आगे सिर नहीं झुकाएगा। स्वदेश प्रेम, स्वतंत्रता और स्वदेशाभिमान उसके मूल–मंत्र थे। राणा कीका का कद मझौल, युद्ध की धूप में तप कर उसका रंग तांबे जैसा हो गया था। उसका सिर तरबूज के जैसा बड़ा था, आंखे बड़ी और लाल थी। कंधे बड़े और फैले हुए थे। नाक तीखी और लम्बी थी। घोड़े पर बैठा राणा युद्ध मैदान में मृत्यु के समान दिखाई देता था।

डॉ. देवीलाल पालीवाल, उदयपुर (महाराणा प्रताप महान् पृ.सं. 43)

अपने कई योद्धाओं को खो देने के बावजूद प्रताप और उसकी सेना अपराजित रह कर सुरक्षित पहाड़ों में लौट गई, मानसिंह उसका पीछा नहीं कर सका। वस्तुतः इस युद्ध का अन्त गोगुन्दा में हुआ, जहां मुगल सेना की बड़ी दुर्दशा हुई और उसको विफल होकर लौटना पड़ा। इस भांति जो लड़ाई 18 जून के दिन खमनोर के मैदान में शुरु हुई, उसका अंत सितम्बर में गोगुन्दा में हुआ जब मुगल सेना विफल होकर लौट गई।

डॉ. देव कोठारी, उदयपुर (महाराणा प्रताप और उनका युग पृ.सं. 13)

मेवाड़ के इतिहास, शिलालेख, प्रशस्तियों आदि में हल्दीघाटी युद्ध में प्रताप की विजय होना लिखा है। मुगल इतिहासकारों के विवरण खुशामद भरे हैं। उनके इन विवरणों से अकबर की विजय संदिग्ध ही लगती है। क्योंकि युद्ध के बाद ही शाही सेना का भयभीत रहना, गोगुन्दा में खाइयां खुदवाना, दीवारें व बाड़े बना कर भीतर कैद रहना उन्हें रसद सामग्री उपलब्ध नहीं होना, प्रताप को जीवित या मृत नहीं पकड़ पाना, बदायूंनी द्वारा अकबर की विजय के कथन पर जनता का विश्वास नहीं करना, मेवाड़ पर कब्जा नहीं कर सकना, मुगल सेना की दुर्दशा और मानसिंह व आसफ खां की गलतियों के कारण उनकी ड्योढ़ी बंद कर देना आदि तथ्य अकबर की विजय सिद्ध नहीं करती।

डॉ. के. एस. गुप्ता व सज्जनसिंह राणावत, उदयपुर (बहुआयामी राष्ट्र नायक प्रताप)

हल्दीघाटी युद्ध में मुगलों को अप्रत्याशित हार का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में महाराणा प्रताप की विजय ने भारतीय क्षितिज में मुगलों के अजेय होने के भ्रम को ध्वस्त कर दिया। इस युद्ध में प्राप्त सफलता ने प्रताप के नेतृत्व के प्रति जन मानस की आस्था को और अधिक प्रगाढ़ कर दिया।

प्रो. आर.पी. व्यास, जोधपुर (महाराणा प्रताप पृ. 135)

परिणामतः मुगलों के लिए यह युद्ध असफल ही रहा। युद्ध के बाद न तो राणा का पीछा किया जा सका न उसे बंदी बनाया जा सका और न मेवाड़ को मुगल साम्राज्य का अंग बनाया जा सका। मुगलों ने कुछ समय के लिए जो क्षेत्र अधीन किया, वह निर्जन, उजाड़ और पथरीला था। इससे मुगल तनिक भी लाभान्वित नहीं हुए। हल्दीघाटी के युद्ध और लूट के नाम पर जो मानसिंह को प्राप्त हुआ, वह केवल राणा का प्रसिद्ध हाथी रामप्रसाद था। इस युद्ध में मुगल विफलता के कारण अब यह भ्रम ध्वस्त हो गया कि मुगल सेना अजेय है।

केसरीसिंह, पाली (The Hero of Haldighati)

बिना किसी संदेह के यह कहा जा सकता है कि खमनोर में मुगल सेना को हार का सामना करना पड़ा। प्रताप ने आक्रमणकारी सेना को अच्छी तरह से खमनोर में पराजित किया। इस युद्ध में प्रताप ने अपने दुश्मन के मन में भय उत्पन्न कर दिया जिससे उनका मनोबल गिर गया। इस युद्ध के कारण प्रताप का नाम और यश देश के दूरवर्ती इलाक. ों तक फैल गया। जिस प्रकार प्रताप अपनी स्वतन्त्रता के लिए जिस निर्भीकता से लड़ा उससे देश की जनता में उनका सम्मान बढ़ गया और उसके राज्य में स्वतंत्रता की भावना में अत्यधिक वृद्धि हुई।

संदर्भ

चक्रपाणि मिश्र, सम्पादक एवं व्याख्याकार श्रीकृष्ण जूगनू, विश्ववल्लभ–वृक्षायुर्वेदः, प्रकाशक : न्यू भारती बुक पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 46 से 119.

रणछोड़ भट्ट, अमरकाव्यम्, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर, पृ. 269

कविराज श्यामलदास, वीर विनोद, प्रकाशकः महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन ट्रस्ट, सिटी पैलेस, उदयपुर, पृ. 164–165.

महामहोपाद्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास भाग–1, प्रकाशकः राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट जोधपुर, पृ. 442.

महामहोपाद्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप, प्रकाशकः राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, पृ. 68–70.

कर्नल जेम्स टॉड, एनाल्स एण्ड एंटिक्विटिज ऑफ राजस्थान, प्रकाशकः महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन ट्रस्ट, सिटी पैलेस, उदयपुर पृ. 334.

डॉ. देवीलाल पालीवाल, महाराणा प्रताप महान्, जीवन वृत्त और कृतित्व, प्रकाशकः नवभारत प्रकाशन जोधपुर, पृ. 29 से 32.

बलवंत सिंह मेहता, जोध सिंह मेहता, प्रताप द पेट्रिऑट, प्रकाशकःप्रताप शोध प्रतिष्ठन, उदयपुर.

राजेन्द्र शंकर भट्ट, महाराणा प्रताप, प्रकाशकः नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली.

डॉ. देव कोठारी व डॉ. ललित पाण्डे, महाराणा प्रताप और उनका युग, प्रकाशकः साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर, पृ.सं. 13.

डॉ. मनोहर सिंह राणावत, महाराणा प्रतापःअप्रकाशित ख्यातो में, प्रकाशकः प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर.

ठा. केसरी सिंह बारहट, प्रताप चरित्र, प्रकाशकःराजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, पृ. 64.

डॉ. हुकमसिंह भाटी, महाराणा प्रतापःऐतिहासिक अध्ययन, प्रकाशकःराजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.

अब्दुल कादिर बदायूंनी, मुंतखाब उल तवारीख के अनुसार,

अबुल फ़ज़ल अल्लमी, अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द 3, पृ. 244

डॉ. के. एस. गुप्ता व सज्जनसिंह राणावत, बहुआयामी राष्ट्र नायक प्रताप, प्रकाशक : महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर.

प्रो. आर.पी. व्यास, महाराणा प्रताप, जोधपुर, पृ. 135

केसरी सिंह, द हीरो ऑफ हल्दीघाटी प्रकाशकःबुक ट्रेजरर, सोजती गेट, जोधपुर

डॉ. देवीलाल पालीवाल, प्राचीन डिंगल काव्य में महाराणा प्रताप, अरुणिम प्रकाशन, उदयपुर

डॉ. देवीलाल पालीवाल, महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर.

डॉ. गोपीनाथ शर्मा एवं मुरली नारायण माथुर, महाराणा प्रताप एण्ड हिज टाइम्स, प्रकाशकः महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर.